ISSN : 2321-3922
जुलाई- 2015

संभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.sambhavya.net

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

ISSN - 2321-3922

संभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

जुलाई–2015

संस्थापक–सह–प्रधान संपादक
श्री दयानन्द जायसवाल

संयोजक
डॉ. विजय कुमार सिंह

संरक्षक
श्री मती प्रतिभा सिन्हा

सम्पादक
डॉ. अश्विनी
डॉ. जी.पी. सिंह

संस्थापक सदस्य
डॉ. राम किशोर शर्मा
श्री उमाकान्त भारती
श्रीमती संयुक्ता गुप्ता

विशिष्ट सदस्य
श्री अजय कुमार सिंह
श्री धनञ्जय प्रसाद मण्डल 'अजित'
श्री सत्यदेवेश प्रसाद
श्री शिवनन्दन प्रसाद सिंह
श्रीमती छाया पाण्डेय

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक : श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त
व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303, 09570838880
वेबसाईट : www.sambhavya.net
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

संभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.sambhavya.net

आमंत्रण

'संभाव्य' अंतराष्ट्रीय स्तर की पूर्णतः निःशुल्क हिंदी त्रैमासिक है। वर्तमान समय में विश्व के 39 देशों के पाठक सहित भारत के 84 शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.sambhavya.net पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन को सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि अक्टूबर–2015 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार के पता के साथ मेल करें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हँटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

रचनाएं भेजें :–
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com

संपादक
संभाव्य हिन्दी त्रैमासिक

ISSN - 2321-3922

अनुक्रम

1	पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	5
2	कहानी	अमृत वृद्धाश्रम	विजय कुमार सप्पत्ति	6
3	कहानी	बरस बीत गये	हिमांशु जोशी	12
4	आलेख	हमारी संस्कृत और संस्कृति	दयानन्द जायसवाल	16
5	गजल	हैरत की बात	हारूण रशीद गाफिल	18
6	गजल	अंधेरी रात है	अभिनव अरुण	18
7	कहानी	संयोग या नियति का खेल	डॉ. आनन्द प्रकाश	19
8	कविता	अकसर कुरेदते हैं	वरुण प्रताप सिंह	22
9	समीक्षा	'सिर्फ घास नहीं' कविता–संग्रह	अशोक सिंह	23
10	यात्रावृतान्त	मधुमय अँचल अरूणाचल	रविशंकर सिंह	27
11	कविता	हरसिंगार रखो	त्रिलोक सिंह ठकुरैल	31
12	कविता	इंतजार	संजय वर्मा 'दृष्टि'	31
13	समीक्षा	अज्ञेय की औपन्यासिक विहंगम–दृष्टि	शिवानी चार्ज	32
14	लघुकथा	वाह! वाह! : छिया–छिया	राजा राघव	34
15	कहानी	प्रेम और विश्वास	मनजीत शर्मा 'मीर'	35
16	कविता	शहीद का गर्म लहू	नसीम साकेति	38
17	कविता	जीवन और सैतान (राघवेन्द्र प्रसाद सहाय)	ज्ञान की ज्योति जलाना (महेन्द्र देवांगन 'माटी')	39
18	कविता	बेटियां (संयुक्ता गुप्ता)	चमकीला पहीया (अभिलेख)	40
19	संस्मरण	देवघर की स्मृतियाँ	शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय	41
20	कविता	जियो शान से / जिम्मेदार बनो	अखिलेश चन्द्र श्रीवास्तव	43
21	आलेख	उच्च शिक्षा में नैतिक मूल्यों का समावेश	स्वर्ण लता ठन्ना	44
22	लघुकथा	आजादी	ठाकुर शंकर कुमार	45
23	कविता	खुदा के नाम	डॉ० गिरिजा शंकर मोदी	46
24	लोकवाणी			47
25	प्राप्त पुस्तकें			48

तुम्हारी याद

कोहरे से छनकर
आती धूप की तरह
गुनगुनी अहसास समेटे हुए
तुम्हारी याद जब आती है
पलकों की कोरो पें
घुमड़ता है बादल का धुआँ
आश की सूखती नदी को
भिंगोती हैं जब बौछारें
सौंधी महक सी मिट्टी की
तुम गुनगुनाती हो मेरे अन्तर में
तुम्हारे स्पर्श को आकार देता
मलय पवन का झोंका
तुम्हारी अदृश्य छवि में
सिमटती हुई मेरे समग्र को
पूरी रात के बाद
स्वपनिल सुबह के इन्तजार में
ठिठके मनः प्राण से सींचती
अमरत्व की वारिधि सी
आती है
तुम्हारी याद...

दयानन्द जायसवाल

पुरोवाक्

संस्थापक की कलम से

आज बाजारवादी विश्व व्यवस्था के प्रभाव में मानवीय संबंध तेजी से बदल रहे हैं। साहित्य पर संचार माध्यमों का जबर्दस्त दबाब है। जीवन में निराशा ,कुंठा और पराजय का भाव प्रबल हो रहा है। । मुट्ठी भर लोग अपनी खुशियों को पाने में दूसरों की भावना को आहत कर देते हैं। राजनीति जनता का व्यापक हितों से कटकर क्षणिक स्वार्थों की पूर्ति का माध्यम बन गई है। ऐसे कठिन समय में एक लेखक भी अपने तथा समय और समाज के आस–पास जो कुछ हो रहा है, उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाते हैं। उनकी यही अनुभूति परिवर्तनों की व्यंजना को परिलक्षित करती है, बाबजूद इसके रचनाकार युग की विडम्बना और बदलाव की चेतना को साहस और ईमानदारी पूर्वक रखते भी हैं। 'संभाव्य' में खासकर कहानियां, कविताओं,समीक्षाओं, आलेखों आदि को शामिल करते हुए उनमें अन्तर्निहित संवेदना की पहचान का प्रयास किया गया है। इसमें कितनी सफलता मिल सकी है इसका निर्णय तो नीर–क्षीर विवेकी आप विद्वज्जन ही करेंगे।

साहित्य में मनुष्य अपने आनन्द को किस प्रकार व्यक्त करता है, इस अभिव्यक्ति में मनुष्य की आत्मा कौन सा चिरंतन स्वरूप देखना चाहती है?वह अपने को रोगी भोगी या योगी किस परिचय से परिचित करा के आनन्द अनुभव करता है?मानव विश्व मानव के बीच अपने को व्यक्त करने के लिए, व्यष्टि समष्टि के बीच अपने को उपलब्ध करने के लिए ही कैसे बनाता – बिगाड़ता रहा है– यह विश्व साहित्य में देखने की चीज है।

मनुष्य की आत्मीयता संसार में कितनी दूर तक उसका अपना सत्य –स्वरूप में रहती है, इसे जानने के लिए साहित्य जगत में तो प्रवेश करना ही पड़ेगा। क्योंकि संसार के चारों ओर एक दूसरा संसार जो साहित्य का ही है। इस जगत का तत्व हममें से किसी व्यक्ति विशेष के अधिकार में या उसके अधीन नहीं है।

वस्तुजगत के समान इसकी भी सृष्टि चलती ही रहती है। इसकी वर्षा के चारों ओर कितने गीतों की वर्षा, काव्यों की वर्षा, कितने मेघदूत, उत्तर रामचरित और कितने विद्यापति, जायसी, कबीर, आदि फैले हुए हैं।

सूर्य के भीतर की ओर वस्तुपिंड अपने को अनेकानेक कठिन रूपों में गढ़ता है, वह हम देख नहीं पाते; लेकिन उसको घेर कर आलोक मंडल, उसी सूर्य को विश्व के निकट व्यक्त कर देता है और हम आलोकित होते हैं। मनुष्य को यदि हम इसी रूप में देख पाते तो उसको इसी प्रकार सूर्य के जैसा ही पाते। साहित्य को मुनष्य के चारों ओर उसी भाषा–रचित प्रकाश मंडली के रूप में एक बार देखें तो लगेगा यहीं ज्योति का झरना फूट रहा है। ज्ञान विज्ञान के विस्फोट के सामने देश व काल की दीवारें ढ़ह जातीं हैं। आज साहित्य की चर्चा जब की जाती है तब यह प्रश्न पहले नहीं उठता कि किस देश का साहित्य है?साहित्य को नोबेल पुरस्कार दिया जाता तो यह नहीं देखते कि किस देश का साहित्य है। इतनी व्यापक कसौटी का प्रयोग हमारे युग का शुभ चिह्न हैं । नदी की सम्पत्ति यदि जल है तो साहित्य की सम्पत्ति भाव या विचार है। साहित्य समाज के विचारों का लेखा– जोखा है।समाज में विभिन्न प्रकार से नई घटनाएं नये विचार आदि उठते हैं वे सब साहित्य में किसी न किसी रूप में अंकित होते हैं।

भौतिक सुख की वृद्धि असंतोष ,विद्रोह और संघर्ष का कारण बनती है किन्तु साहित्य का सृजन यदि कोई करता है तो उसका रसानुभव कोई और भी सहृदयी करता है। इस अंक में रचनाकारों की दृष्टिगत सूक्ष्मता , समाज सम्पृक्तता का आभास भी है।

कहानी

अमृत वृद्धाश्रम

एक नयी शुरूआत

विजय कुमार सप्पत्ति
सिंकद्राबाद, तेलंगाना
मो0 9849746500

मैंने धीरे से आँखें खोली, एम्बुलेंस शहर के एक बड़े हार्ट हॉस्पिटल की ओर जा रही थी । बगल में भारद्वाज जी, गौतम और सूरज बैठे थे मुझे देखकर सूरज ने मेरा हाथ थपथपाया और कहा, ईश्वर अंकल! आप चिंता न करें, मैंने हॉस्पिटल में डॉक्टर्स से बात कर ली है, मेरा ही एक दोस्त वहाँ पर हॉर्ट सर्जन है, सब ठीक हो जाएगा। ''गौतम और भारद्वाज जी ने एक साथ कहा, हाँ सब ठीक हो जायेगा। ''मैंने भी धीरे से सिर हिलाकर हाँ का इशारा किया । मुझे यकीन था कि अब सब ठीक हो जाएगा।

मैंने फिर आँखे बंद कर ली और बीते बरसों की यात्रा पर चल पड़ा । यादों ने मेरे मन को घेर लिया।

'कुछ बरस पहले'

कार का हार्न बजा । किसी ने ड्राइविंग सीट से मुंह निकाल कर आवाज लगाई, अरे चौकीदार, दरवाजा खोलना।

मैंने आराम से उठकर दरवाजा खोला। एक कार भीतर आकर सीधे पार्किंग में जाकर रूकी। मैं धीरे – धीरे चलता हुआ उनकी ओर बढ़ा । कार से एक युवक, युवती निकले और पीछे की सीट से एक बूढ़ी माता । युवक कुछ बोलता, इसके पहले ही मैंने कहा, ''अमृत वृद्धाश्रम में आपका स्वागत है, ऑफिस उस तरफ है।''

मैंने गहरी नजरों से तीनों को देखा । ये एक आम नजारा था इस वृद्धाश्रम के लिए। कोई अपना ही अपनों को छोड़ने यहाँ आता है। सभी चुप थे पर लड़के के चेहरे पर उदासी भरी चुप्पी थी। लड़की के चेहरे पर गुस्से से भरी चुप्पी थी और बूढ़ी अम्मा के चेहरे पर उदासी भरी चुप्पी । ये दुनिया की सबसे भयानक चुप्पी होती है। खालीपन का अहसास सब कुछ होते हुए भी डरावना होता है और अंततः यही अहसास इंसान को मार देता है।

तीनों धीरे धीरे मेरे साथ ऑफिस की ओर चल दिए। मैं बूढ़ी अम्मा को देख रहा था । वे करीब–करीब मेरी ही उम्र की थी। बहुत थकी हुई लग रही थी, उसके हाथ कांप रहे थे। उससे ठीक से चला भी नहीं जा रहा था। अचानक चलते चलते वो लड़खड़ाई तो मैंने उसे झट से सहारा दिया और उसे अपनी लाठी दे दी। लड़के ने खामोशी से मेरी ओर देखा । मैंने बूढ़ी अम्मा को सांत्वना दी। ठीक है अम्मा। धीरे चलिए, कोई बात नहीं। बस आपका नया घर थोड़ी ही दूर है। मेरे ये शब्द सुनकर सब रूक गए। युवती के चेहरे का गुस्सा कुछ और तेज हुआ। लड़के के चेहरे पर कुछ और उदासी फैली, बूढ़ी माँ की आंखों से आंसू छलक पड़े। युवती गुर्राकर बोली, तुम्हें ज्यादा बोलना आता है क्या?चौंकीदार हो चौकीदार ही रहो'' । मैंने ऐसे दुनियादार लोग बहुत देखे और वैसे भी मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता । मैं इन जमीनी बातों से बहुत ऊपर आ चुका था। मैंने कहा ''बीबी जी मैंने कोई गलत बात तो नहीं कहीं, अब इनका घर तो यही है। ''युवती गुस्से से चिल्लाई, हमें मत समझाओ कि क्या है और क्या नहीं है? युवक ने उसे शांत रहने को कहा। बूढ़ी अम्मा के चेहरे पर आंसू अब बहती लकीर बन गए थे।

ये शोर सुनकर ऑफिस से भारद्वाज और शान्ति दीदी बाहर आये। उन्होंने पूछा, ''क्या बात है ईश्वर?किस बात का शोर है? मैंने ठहर कर कहा 'जी, कोई बात नहीं है, बस ये लोग आये हैं। बूढ़ी अम्मा को लेकर। युवती फिर भड़क कर बोली, तुम जैसे छोटे लोगों के मुंह नहीं लगना चाहिए। भारद्वाज जी सारा मामला समझ गए । उन्होंने शांत स्वर में कहा ''मैडम जी, यहाँ कोई छोटा नहीं है और न ही कोई बड़ा। ये एक घर है, जहाँ सभी समान रहते हैं और मुझे बड़ी खुशी होती है अगर ऐसा ही घर समाज के हर हिस्से में भी रहता।''

युवती कसमसा कर चुप हो गयी । युवक ने सभी को भीतर चलने को कहा, जाते जाते बूढ़ी अम्मा ने मुझे पलट कर देखा। मैंने उसे आंखों में एक अपनत्व भरी सांत्वना दी। ऑफिस में मैंने बूढ़ी माता के लिए कुर्सी लाकर रख दी। मैं उन सभी को और इस फानी दुनिया के खत्म होते रिश्ते को देखते

हुए खुद दरवाजे के पास खड़ा रहा। थोड़ी देर की चुप्पी के बाद युवक धीरे से बोला,''भारद्वाज जी आपसे कल बात हुई थी, मैं अमित हूँ , ये मेंरी माँ है। इनके बारे में आपसे बात की थी''। इतना बोलने के बाद वो चुप हो गया। वो असहज सा था। उसका गला रूंद्ध जाता था। मैंने अपने लम्बे जीवन में ये सब बहुत देखा था। मैंने युवती की ओर देखा वो अभी भी गुस्से में ही थी। बूढ़ी अम्मा अपने बेटे की ओर देख रही थी, इस आशा में की अब जो होने वाला है, वो नहीं होगा और वो फिर वापस चल देंगे। लेकिन मैं जानता था , ये नहीं होने वाला था।

मैंने चुपचाप आलमारी से रजिस्टर और रसीदबुक निकाल कर भारद्वाज जी के सामने रख दिया भारद्वाज जी ने अमित को वृद्वाश्रम के खर्चे के बारे में बताया। अमित ने चुपचाप अपने पर्स से रूपये निकाल कर दे दिये और जरूरी कागजात पर दस्तखत कर दिये।

बूढ़ी अम्मा की आंखों से आंसू बहे जा रहे थे वो अब भी अपने बेटे को देखी जा रही थी । भारद्वाज जी ने धीरे से कहा, ''अब सब ठीक है जी। '' ये सुनते ही युवती उठकर खड़ी हो गयी चलने के लिए। बूढ़ी अम्मा ने अपने आंसू पोछ लिए और युवती से कहा, ''बहू अमित का ख्याल रखना।''युवती ने कोई जवाब नहीं दिया और बाहर की ओर चल दी। युवक बैठा रहा चुपचाप। फिर उसकी आंखों से भी आंसू टपक पड़े। बूढ़ी अम्मा ने कहा, जाने दे बेटा। सब ठीक है। यहाँ ये सब मेरा ख्याल रखेंगें। तू अपना ख्याल रखना, समय पर खाना खा लिया करना।

माँ बेचारी क्या करती। वो तो है ही ममता की मूरत। उसने उसे उठाया और कहा, ''अमित कोई बात नहीं , चलो अपना घर बार संभालो, मेरा क्या है, आज हूँ कल नहीं। तु जा, हाँ अब कभी मुझ से मिलने मत आना। '' युवक अवाक् सा चुप खड़ा रहा। ये खामोशी विदाई की थी। ये खामोशी शिस्तों के टूटने की थी। ये खामोशी इंसान की इंसानियत के मरने की भी थी। इतने में दो आवाजें एक साथ आई, उस युवती को जो बाहर से चिल्ला रही थी, ''अब चलो भी, यहीं नहीं रहना है मुझे' और दूसरी आवाज शान्ति की थी, जिसने बूढ़ी अम्मा को सहारा देकर अन्दर चलने के लिए कहा था।

युवक चुपचाप हार और बेचारगी को अपने चेहरे पर लिये बाहर की ओर चल दिया । बाहर जाते हुए उसने मुझे कुछ रूपये देने चाहे और कहा, ''चौकीदार भैय्या माँ का ख्याल रखना मैंने उसके पैसे वापस लौटाते हुए कहा '' माँ का ख्याल तो हम रख लेंगे अमित बाबू। आप सोचो, आपका माँ जैसा ख्याल अब कौन रखेगा और यहाँ पैसे नहीं प्यार का सौदा होता है।'' युवक खामोशी से मुझे देखता रह गया।।

युवक–युवती कार की ओर चल दिये, बूढ़ी अम्मा शान्ति दीदी के साथ भीतर की ओर चल दी। भारद्वाज जी मुझे देखते हुए आलमारी की ओर चल दिये और मै फिर से अपनी जगह गेट पर चल दिया।

मेरे लिए ये कहानी लगभग हर महीने की थी। जब कोई न कोई किसी न किसी अपने को यहाँ छोड़ जाता है। हाँ आज की गाथा थोड़ी अलग सी थी। लड़का जिन्दगी के पेशोपेश में तो था, पर कायर था खैर। मैने मन ही मन गिनती की, अब यहाँ 26 लोग हो गए थे। ये वो बूढ़े थे ,जिनमें से किसी का कोई नहीं था इसीलिए वो यहाँ आकर एक दूसरे से मानसिक और भावनात्मक रूप से जुड़ गए। यहाँ की बात कुछ और है। यहाँ सबको एक अपनापन मिलता है। घर से अलग होकर भी यहाँ घर जैसा प्रेम और अपनत्व मिलता है।

।। बहुत बरस पहले ।।

इस जगह का नाम अमृत वृद्धाश्रम था और मेरा नाम ईश्वर। पता नहीं मेरी माँ ने क्या सोचकर मेरा नाम इतना अच्छा रखा था। जब मैं बीस बरस का था, तब मैं अपनी माँ के साथ अपना गाँव छोड़कर यहाँ आया था, तब ये एक छोटा सा हॉस्पिटल था। डॉक्टर अमृतलाल नाम का सज्जन इस जगह के मालिक थे। इस हॉस्पिटल का वार्ड+वॉय+चौकीदार सारे बचे हुए काम करने वाला बन गया। माँ का बहुत ईलाज हुआ उसे टी0 बी0 थी । वो बच नहीं सकी। करीब एक साल के बाद वो चल वसी । अब मेरा इस दुनिया में कोई नहीं था, सो मैं यहीं का होकर रह गया । धीरे धीरे अमृतलाल जी का मैं विश्वसनीय बन गया। हॉस्पिटल बड़ा होने लगा। लोग आने जाने लगे। अमृत लाल जी का यहाँ कोई न था जो यहाँ रह सके। एक अकेला बेटा गौतम था जो कि डाक्टर बनने की चाह में चण्डीगढ़ में एम.बी.बी.एस. कर रहा था। ये उसका आखरी साल था। अमृत लाल जी चाहते थे कि यहीं इसी हॉस्पिटल में आकर काम करे। लेकिन इरादे कुछ और थे, वो आगे की पढ़ाई के लिए लंदन जाना चाहता था और इसी बात पर अक्सर दोनों पिता पुत्र में तेज बातचीत हो जाती थी।

हॉस्पिटल बढ़ रहा था, सस्ता हॉस्पिटल होने की बजह से बहुत गरीब यहाँ आते थे। अमृतलाल जी की पुस्तैनी संपत्ति से ये हॉस्पिटल चल रहा था। मैं हॉस्पिटल का हर काम कर लेता था। सब मुझे पसंद भी करते थे। मैं मेहनती था और माँ के गुजरने के बाद हर किसी की सेवा करता था। सभी इसी सेवाभाव से खुश थे अमृत लाल जी मेरा ख्याल रखते थे। मैं उन्हीं के साथ, उन्हीं के घर पर रहता था। एक दिन उनके

लिए भारद्वाज जी उनसे मिलने आये। दोनों बहुत सालों के बाद मिले थे। मैंने उनके लिए खाना बनाया। खाने के दौरान भारद्वाज जी ने अमृतलाल जी से कहा कि उनकी बहू उनसे ठीक बर्ताव नहीं करती है और वे बहुत दुखी हैं। अमृत लाल ने बिना सोचे कहा कि वो यहीं आकर रहे और उनके साथ इस हॉस्पिटल की देखभाल करें। भारद्वाज को जैसे मन चाहा वरदान मिल गया। वो यहीं रह गए। अमृत जी का घर बड़ा सा था, मैं उनके लिए खाना बनाता, धर का रख रखाव करता और वहीं रहता भी था । दोपहर में हॉस्पिटल के छोटे बडे काम कर लिया करता था। बस जिन्दगी कट रही थी। ये हॉस्पिटल एक बहुत बड़े परिवार का अहसास दिलाते रहता था।

मेरे मन में कभी शादी करने का ख्याल भी नहीं आया। काम इतना रहता था कि किन्हीं और बातों के लिए समय ही नहीं मिल पाता था। इतने सारे लोगों की सेवा में मुझे बहुत खुशी, मिलती बदले में आशीर्वाद और प्रेम ही मिलता । सब ने मुझे हमेशा अपना ही समझा।

समय बीतने के साथ भारद्वारा जी ने उस हॉस्पिटल के पिछले हिस्से में एक वृद्धाश्रम खोला। जहाँ उन बूढ़े व्यक्तियों को रहने की व्यवस्था की गयी थी। जिनका सब कुछ होकर भी कोई नहीं था, कहीं कुछ नहीं था। मैंने धीरे– धीरे ये हिस्सा संभालना सीख लिया। मेरे विनम्र और दयालु स्वभाव की वजह से सब मुझे अपना ही मानने लगे।

एक दिन भारद्वाज का लड़का आया अपनी पत्नी के साथ, जायदाद मांगने के लिए। खूब हंगामा हुआ भारद्वाज ने गुस्से में सारी जायदाद वृद्धाश्रम के नाम लिख दी और अपने बेटे,बहू से रिश्ता तोड़ लिया। मैं आवाक् था । मैंने अक्सर यहाँ एक घर को टूटते और दूसरे घर को बनते देखा है।

हम तीनो; मैं, अमृत लाल जी और भारद्वाज जी दीन–दुखियों की सेवा में अपना सारा सुख ढूंढते थे। फिर वो दिन भी आ ही गया जो मुझे कभी पसंद नहीं था। अपनी पढ़ाई पूरी करके अमृतलाल जी का लड़का लन्दन जाने की तैयारी के साथ आया और अमृतलाल जी को अपना फैसला सुना दिया। अमृतलाल जी ने कहा, ठीक है पढाई पूरी करके वापस आ जाओ और ये हॉस्पिटल संभालो, लड़के ने मना कर दिया । लड़के ने खुले रूप से कहा कि वो इन गरीबों के लिए नहीं बना है और न ही कभी यहाँ आना चाहेगा। उसने पिताजी से कहा '' या तो वो उसके साथ चले या यहीं रहे।'' अमृतलाल जी अवाक् रह गए। उन्होनें कहा ''ये मेरा घर है , ये सभी मेरे अपने लोग हैं, मैं इन्हें छोडकर कहां जाऊँ। मैं ही इन सबका सहारा हूँ '' । लड़के ने कहा,'' सेवा करने के लिए मैंने पढ़ाई नहीं की है। मैंने एक सुख भरे जीवन की कल्पना की है, जो कि यहाँ रहने से नहीं मिलेगा। आप मेरे साथ चलिए'' पर अमृत लाल जी ने नहीं माना। मैं चुप था। भारद्वाज जी भी चुप थे। अमृत लाल जी ने उसकी पढाई के लिए पैसों की व्यवस्था कर दी और चुपचाप सोने चले गए। लड़का दूसरे दिन चला गया अकेला ही बिना अपने पिता को साथ लिये । हमेशा के लिए।

अमृतलाल जी उसको पैसा भेजते रहे। वो पढ़ता रहा, उसने वहीं लंदन में अपने साथ काम करने वाली डॉक्टर लडकी से शादी कर ली और फिर बीतते समय के साथ, उसे एक बेटा पैदा हुआ, उसका नाम सूरज था ये नाम अमृत लाल जी ने ही सुनाया था।

फिर वो दिन भी आ गया जिसे मैं कभी भी याद नहीं करना चाहता।

उस दिन अमृतलाल जी का जन्मदिन था। उन्हें सुबह से ही सीने में दर्द था। उनका बेटा गौतम लन्दन से आया हुआ था और वो शाम को मिलने आने वाला था। उन्होंने अब तक उसे नहीं देखा था। हॉस्पिटल में उस दिन कोई नहीं था। हम सब उनके कमरे में थे, मैंने और भारद्वाज जी ने उनके कमरे को सजाया। शाम को करीब एक वकील साहब आये। अमृतलाल जी, वकील साहब और भारद्वाज जी के साथ अपनी बैठक में चले गए। करीब एक घंटा बाद वो सब बाहर निकले । अमृतलाल जी के चेहरे पर परम संतोष था।

फिर इन्तजार करने लगे अपने बेटे, बहु और पोते का। मैंने सभी के लिए अच्छा सा खाना बनाया हुआ था और हाँ उनके लिए केक भी लेकर आया था। हम सब इन्तजार ही कर रहे थे कि अचानक शहर में तेज बारिश होने लगी, बर्फ के ओले भी गिरे, और आंधी तुफान का माहौल हो गया। बिजली भी चली गयी, मैंने और भारद्वाज जी ने लालटेन जलाई। हम इन्तजार कर ही रहे थे कि उनका बेटा गौतम अपने परिवार के साथ आवे लेकिन कुछ देर बाद उसका फोन आया कि वो इस आंधी तूफान में नहीं आ सकता। यह सुनकर अमृतलाल जी का चेहरा बुझ गया। रात गहराती जा रही थी। मैंने भारद्वाज जी से कहा कि ''आप भी सो जांय''। उनके सोने के बहुत देर बाद रात करीब दो बजे मैंने हिम्मत करके अमृतलाज जी की बैठक में झांक कर देखा, वो चुपचाप बैठे थे। बार बार वो अपने फोन की ओर देखते थे कि शायद वो बजे और संदेशा आये कि उनका गौतम आ रहा है। लेकिन उसे बजना न था सो न बजा। केक वैसे ही पड़ा रहा। खाना किसी ने भी नहीं खाया।

मैं वहीं बैठक के बाहर बैठे–बैठे सो गया। सुबह–सुबह भारद्वाज जी ने मुझे उठाया। वो और अमृतलाल जी दोनों रोज

सैर को जाते थे। रात तो बीत चुकी थी। आंधी तूफान भी ठहर गया था। मैंने दरवाजा ठकठकाया। दरवाजा अन्दर से बंद था। कोई आबाज नहीं आई, हम दोनों आशंकित हो उठे और जोर–जोर से दरवाजा ठोका। फिर नहीं खुला तो तोड़ दिया। वही हुआ जिसका डर था। अमृतलाल जी चल बसे थे। मैं और भारद्वाज जी रोने लगे। इतने में गौतम अपनी पत्नी और सूरज के साथ आ पहुँचा। उसे सब कुछ समझते हुए देर नहीं लगी। वो अचानक ही चुप हो गया। भारद्वाज जी ने कहा, ''गौतम तुम यही बैठो । इतने बड़े इंसान हैं, बहुत से लोग आयेंगे। बहुत सा काम करना होगा, हम सब इंतजाम करते हैं।

अंतिम संस्कार हुआ, सारे शहर से लोग आये। मुझे भी उस दिन पता चला कि अमृलाल जी की इस शहर में कितनी इज्जत थी। गौतम चुपचाप बैठा रहा, बहू भी चुपचाप ही थी, हाँ पोता सूरज थोड़ा परेशान था, विचलित था। उसने दादा को पहले कभी नहीं देखा था और जब देखा तो इस अवस्था में । वो बार–बार रो उठता था। गौतम चुपचाप इसलिए था कि उसने शहर के लोगों की भीड़ देखी थी और उसे समझ में आ गया था कि उसने क्या खो दिया है? मैं खुद हैरान सा था कि कितने सारे लोग उनसे प्रेम करते थे कितनों का रो–रो कर बुरा हाल था।

रात को सारा कार्यक्रम निपटने के बाद, हम जब बैठे तो सिर्फ झींगुरों की आवाजें सुनाई दे रही थीं। सभी चुपचाप थे, मैं था, भारद्वाज जी थे और गौतम था। बहू सूरज के साथ सोने चली गयी थी। सूरज को हल्का सा बुखार आ गया थी और मन से भी परेशान था। इतने में वकील साहब आये। वो अमृतलाल जी के पुराने मित्र थे। उन्होंने कहा ''ये वसीयत करवा ली थी। मैं उसे आप सब को बताना चाहता हूँ''।

मैं उठकर खड़ा हो गया। वकील ने मुझे बैठने को कहा। वकील ने कहा ''जायदाद के तीन हिस्से हुए हैं। एक बड़ा हिस्सा इस हॉस्पिटल और वृद्धाश्रम को दिया गया है। दूसरा हिस्सा पोते सूरज के लिए दिया गया है और तीसरा हिस्सा चौकीदार ईश्वर के नाम है।

ये सुनकर मैं बहुत जोर से चौंका। मैंने कहा, '' साहब , कोई गलती हो गयी होगी, मुझे कोई पैसा रकम नहीं चाहिए। मैं तो यहीं रहूँगा। सब कुछ मेरा अब यही हैं। अमृत साहब मेरे पिता जैसे थे। उनके बाद अब मेरा कौन है'' कहकर मैं रोने लगा।

वकील ने समझाया '' भाई जो उन्होंने कहा मैं किया, भारद्वाज भी थे वहां। पूछ लो''

मैंने कहा, मुझे कुछ नहीं चाहिए, मेरा हिस्सा भी सूरज को ही दे दीजिये। वकील ने मेरा सर थपथपाया। मैं चुपचाप आंसू बहाने लगा।

गौतम चुपचाप उठकर खड़ा हो गया। उसने कहा, '' कल सुबह मिलते हैं, राख को नदी में बहाने जाना है''।

रात बहुत गहरी हो रही थी और आँखों में नीद नहीं थी। कल तक मैं कुछ भी नहीं था और आज इस जायदाद के एक हिस्से का मालिक । लेकिन मैं इस रूपये का क्या करूँगा, मेरे तो आगे पीछे कोई है ही नहीं। नहीं, नहीं मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं तो इसी जगह के एक कोने में पडा रहूँगा।

सुबह हुई। हम सब वहीं पास में मौजूद नदी के किनारे चले, रास्ते में श्मशान घाट से अमृत जी की चिता में से राख ली और नदी में जाकर उसे बहा दिया, मेरी आँखों से आंसू बहने लगे। भारद्वाज भी रोने लगे। उनका सबसे पुराना और गहरा मित्र जो चला गया था। लड़का जो कल तक कुछ नहीं बोला, आज रोने लगा, उसकी पत्नी भी रोने लगी और सूरज भी रोने लगा। कुछ देर के शोक के बाद सब वापस आये। गौतम पास के ट्रेवल एजेंट के पास गया और वापसी की टिकट करवा ली। वो अचानक ही बहुत शांत हो गया था। अब उसे समझ आ गया था कि जो उसने खोया था वो कभी भी वापस नहीं आने वाला था।

तेरहवीं के भोज के बाद गौतम, मेरे और भारद्वाज के पास आया, उसने उन्हें एक लिफाफा दिया और कहा। ''मैं सारी वसीयत, जो पिता जी ने सूरज के नाम की है, उसे इस वृद्धाश्रम और ईश्वर को देता हूँ। इसके सही हकदार यही दोनों हैं। मैं शांत था। मैंने एक बार कहा, गौतम भैय्या अगर यहीं रूक जाते तो हम सभी को बहुत खुशी होती।'' गौतम चुपचाप रहा,कुछ नहीं कहा। शायद कुछ कहने के लिए था ही नहीं।

दूसरे दिन गौतम वापस चला गया। शायद हमेशा के लिए। कभी भी वापस नहीं आने के लिए।

कुछ दिनों बाद मैंने वकील से कहकर सारी जायदाद जो कि मेरे नाम थी, उसे वृद्धाश्रम के नाम कर दी। अब चूँकि अमृत जी नहीं रहे तो धीरे धीरे हॉस्पिटल बंद हो गया और फिर कुछ दिनों के बाद सिर्फ आज का ये अमृत वृद्धाश्रम ही रह गया। भारद्वाज जी सारा काम काज संभालते और मैं सबकी सेवा करते रहता।

मैंने भारद्वाज से वचन लिया कि वो किसी से इस बारे में नहीं कहेंगें कि इस वृद्धाश्रम में मेरा क्या योगदान है। मैंने कहा कि मैं इसी चौकीदार वाले रूप में खुश हूँ । और मुझे यहीं बने रहने दीजिये। भारद्वाज जी नहीं माने, मैंने फिर उन्हें

अपनी कसम दी , वो चुप हो गए। उन्होंने कहा, बेटा, तू सच ईश्वर है । भगवान हर किसी को तेरी जैसी ही औलाद दें।

वृद्धाश्रम चल पड़ा। यहाँ हर महीने कोई न कोई आ जाता, कोई न कोई गुजर जाता । मैं कई बातों से अभ्यस्त हो चुका था।जिन्दगी चल रही थी, एक दूसरे के सुख–दुख बांटते थे मिलकर काम करते थे। हमने कुछ नर्सें रखी हुई थी। कुछ लोगों को भी रखे हुए थे, सब इस आश्रम की देखभाल करते थे। भारद्वाज जी ने सभी से कह दिया था कि ईश्वर की बात हर कोई माने। बहुत कम लोग मुझे ईश्वर कहकर पुकारते थे। ज्यादातर लोग मुझे सिर्फ चौकीदार ही कहते थे और मुझे इससे कोई शिकायत नहीं थी।

।। कुछ बरस पहले ।।

एक दिन शान्ति दीदी का फोन आया। शान्ति हमारे पुराने हॉस्पिटल में नर्स थी, उसके आगे पीछे कोई नहीं था, एक भतीजा था, जो कि उसकी नौकरी पर अपनी जिन्दगी के मजे ले रहा था। फिर शान्ति को एक दिन एक्सीडेंट से पैर में चोट लग गयी। वो अब काम पर नहीं आती थी। फिर भी अमृत जी ने इंतजाम करवाया था कि उसे हर महीनें उनकी तनख्वाह मिल जाए।

उस दिन उसका फोन आया कि उसके भतीजे ने उसका घर ले लिया है और उसे घर से निकल जाने को कह रहा है, अब वो बेसहारा है। मैंने भारद्वाज जी से कहा कि वो बेसहारा और बेआसरा नहीं है, वो यहाँ आ जाए और फिर मैं उसे लाने के लिए आश्रम की गाड़ी लेकर उसके घर पहुंचा। मैं अब उसे लेने गया तो देखा वो घर के बाहर एक छोटी सी पेटी लेकर चुपचाप बैठी है। मुझे देखकर वो उठी, पैर की चोट की वजह से वो लड़खड़ा गयी, मैंने दौडकर उसे संभाला। उससे कहा और कोई सामान, जो ले जाना है? उसने कहा, कुछ नहीं , जो कुछ कमाया वो यह घर ही था। वो भी छिन गया। अब कुछ नहीं रहा। लेकिन हाँ वृद्धाश्रम जाने के पहले मुझे तुम कुछ जगह ले जा सकते हो तो मुझे बहुत खुशी होगी।

मैंने कहा ''कोई बात नहीं आप चलो तो।'' मैंने उसे गाड़ी की पिछली सीट पर बिठाकर उससे पूछा,'' बताओ कहाँ जाना है?'' उसने कहा, मैं हर जगह एक बार जाना चाहती हूँ जहाँ मैंने अपनी जिन्दगी का कोई हिस्सा जिया है। मैंने धीरे से पूछा,'' अब इस बात का क्या मतलब है? उसने शायद रोते हुए कहा था, मुझे पता है, मैं उस वृद्धाश्रम में आखरी दिन बिताने जा रही हूँ जहाँ से अब कभी भी नहीं लौट पाउंगी। मैं चुप हो गया। मेरे गले में कुछ अटक सा गया था। मुझे भी शायद रूलाई आ रही थी। पर मैंने चुपचाप गाड़ी आगे बढ़ा दी। उसने रास्ते में रूककर कुछ फूल खरीदे।

सबसे पहले वो एक मोहल्ले में एक बड़े से घर के पास मुझे लेकर गयी, उसे देखते ही उसकी आँखों में बड़ा दर्द सा उमड़ आया। उसने मुझे बताया कि वो ब्याह कर इसी घर में आई थी, फिर इसी घर में उसके पति का देहांत हो गया, और इसी घरवालों ने उसे उसकी बच्ची सहित घर से बाहर निकाल दिया।

फिर वो मुझे एक ईसाई हॉस्पिटल में लेकर आई, जहाँ उसने मुझे बताया कि यहाँ एक सिस्टर मेरी थी, जिसने उसे सहारा दिया और यहाँ पर उसे नर्सिंग सिखाया। फिर वो यहीं पर नर्स हुई, इसके बाद वो हमारे हॉस्पिटल में नर्स बनी। तब वो मुझे एक कब्रिस्तान लेकर आई, उसने रास्ते में जो फूल खरीदे थे, उसे लेकर उतर गयी। मैंने उसे एक प्रश्न भरी निगाह से देखा। उसने आँखों में आंसू भरकर कहा, ''यहाँ मेरी बच्ची की कब्र है, बचपन में ही कुपोषण की वजह से बीमारियों की शिकार हुई और एक दिन इस दुनिया से चल बसी''। उसकी कब्र पर वो फूल चढ़ाकर आना चाहती थी। मेरे मुँह से कोई बोल न फूटे। वो भीतर चली गयी और मैं फूट फूट कर रो पड़ा।

कुछ देर बाद वो आई तो बहुत संयत दिख रही थीं वो शायद जी भरकर रो चुकी थी, अपना मन हल्का कर चुकी थी। वो गाड़ी में आकर चुपचाप बैठ गयी और एक गहरी सांस लेकर कहा, ''चलो मेरे नए घर में मुझें ले चलो, मैंने गाड़ी को मोड़ते हुए धीरे से पूछा'' एक बार क्या वो अपना घर फिर देखना चाहेगी, जिसे वह छोड कर आ रही है। उसने एक आह भरी और थोड़ा सोचकर कहा, हाँ एक बार दिखा दो, मैंने बडी मेहनत से उसे बनाया है। पर उसे भी इस दुनिया के मक्कार लोगों ने छीन लिया।

मैंने चुपचाप गाड़ी उसके घर के पास रोकी। वो बहुत देर तक कार में बैठकर उसे देखती रही और रोती रही फिर उसने धीरे से कहा'' चलो चलते हैं। मैं उसे यहाँ ले आया, तब से वो यहीं पर है और इसी आश्रम का एक हिस्सा है।

।।। अब।।।

इसी तरह की कहानियों और किस्सों से भरा हुआ है ये अमृत वृद्धाश्रम। लेकिन एक बात यहाँ बहुत अच्छी है, लोग यहाँ आकर अपने दुःख भूल जाते हैं और सब एक ही परिवार का हिस्सा बनकर रहते हैं। मेरे परिवार का हां ये मेरा ही तो परिवार है, एक बड़ा सा भरा हुआ परिवार । मेरा अपना तो कोई है नहीं, लेकिन ये सभी अब मेरे अपने ही बन

गए हैं। ये तो परमात्मा की ही कृपा थी कि अमृत लाल जी, भारद्वाज जी और हम सब की सोच एक जैसी थी जो इस सपने को हम सबों ने जीवन दिया। यहाँ हर धर्म के लोग रहते हैं और यहाँ हर त्योहार भी मनाया जाता है। बस जीवन के अंतिम दिनों में सभी खुश रहें यही हम सबकी एक निरंतर कोशिश रहती है।

बस एक कमी है और वो है हॉस्पिटल की सेवाएं, उसके लिए हमें दूसरे हॉस्पिटल पर निर्भर रहना पड़ता है। सभी बूढ़े थे। हमेशा कोई न कोई बीमार ही रहते थे। अक्सर हमें किसी न किसी को हॉस्पिटल ले जाना पडता था। आश्रम के पास एक एम्बुलेंस था और शांति थोड़ी बहुत प्राथमिक उपचार कर लेती थी पर हमेशा ही हॉस्पिटल जाना पड जाता था। अक्सर ऐसे मौंको पर एक कसक सी दिल में उठती थी कि काश, उस वक्त अमृत जी का बेटा गौतम यहाँ रूक गया होता, या पढ़ाई पूरी करके यहीं बस गया होता तो वो हॉस्पिटल कभी भी बंद नहीं होता। खैर विधि का विधान जो भी हो।

।।आज।।

आज सुबह मैं थोड़ा जल्दी उठ गया हूँ। कुछ अच्छा नहीं लग रहा हैं शायद उम्र का असर हो। पता नहीं मेरी उम्र कितनी हो गयी है, आजकल कुछ याद भी नहीं रहता।

भारद्वाज जी ने आकर मुझे देखा और कहा ईश्वर शायद तुम्हारी तबियत खराब है तुम आराम कर लो। मैंने कहा जी कुछ नहीं, थोड़ी सी हरारत है । शायद उम्र थका रही है।

इतने में एक कार रूकी। हम दोनों ने पलटकर दरवाजे की ओर देखा। कार से अचानक एक आवाज आई, ईश्वर काका,। मेरे लिए ये एक नया संबोधन था। सब मुझे चौकीदार ही कहकर पुकारते थे। बाहर की दुनिया में किसी को मेरा असली नाम पता नहीं था। हम दोनों ने गौर से देखा । कार का दरवाजा खुला और एक सुखद आश्चर्य की तरह अमृतलाल जी का बेटा गौतम , एक नौजवान के साथ उतरा। मुझे बहुत बहुत अच्छा लगा मैंने भारद्वाज जी से कहा''आज सूरज हमारे आँगन में उगा है, जरूर कुछ अच्छा होगा। पास आकर गौतम ने कहा '' हाँ, ईश्वर ये सूरज है। हमारा सूरज, आपका सूरज, हम सब का सूरज होगा''। अमृत जी का पोता। पास आकर मेरे पैर छुए तो मेरी आँखे छलक गयी, पहली बार किसी ने मेरे पैर छुए थे। मेरे हाथ कांपते हुए आशीर्वाद देने के लिए उठ गए। सूरज ने कहा ''ईश्वर काका। मैं आज आपसे अपने पिता जी की तरफ से मांफी मांगने आया हूँ और दादा जी का सपना पूरा करने आया हूँ''। मेरी आँखे खुशी से बह रही थी। सूरज ने आगे कहा, मैं भी डाक्टरी की पढ़ाई पूरी कर ली है। और अब मैं और पिता जी यही रहेंगे, दादा जी का सपना पूरा करेंगे। मैंने कंपकंपाते स्वर से पूछा,'' और माँ ? गौतम ने कहा ''वो नहीं रही। इसी साल उसका देहांत हो गया अब मैंने फैसला कर लिया है कि हम यहीं आकर रहें, आप और भारद्वाज अंकल ने निस्वार्थ सेवा का बीड़ा उठाया है, अब हम भी उसमें अपना योगदान देंगे । यही सच्चे अर्थों में हमारी वापसी होगी, अपने देश के लिए, अपने पिता के लिए, उनके उद्देश्य के लिए और यही हमारा प्रायश्चित होगा''। इतना कहकर गौतम ने अपनी आँखों से आसू पोछे।

शान्ति जो इतने देर से पीछे आकर हमारी बाते सुन रही थी वो अपने आंसू पोछते हुए वापस मुड़कर आश्रम के भीतर गयी और एक पूजा की थाली ले आई। आरती का दीया जलाकर दोनों की आरती उतारते हुए उसने कहा पधारो अपने देश बेटा। हम सबकी आँखे भींग उठी।

गौतम ने एक लिफाफा निकाल कर मेरे और भारद्वाज जी के हाथों में दिया और कहा, ''इसमें मेरी संपत्ति के कागजात है, मैंने अपना सबकुछ इस वृद्धआश्रम को दे दिया है। इसकी सारी जिम्मेदारी ईश्वर और भारद्वाज अंकल को सौंपी है, सब कुछ अब इस आश्रम के लिए है।

यह सुनकर मैं रो पड़ा मेरा दर्द और बढ गया और मैं कांप कर गिर पड़ा। सूरज ने तुरत मेरी नब्ज को देखा और कहा, अरे आपकी नब्ज डूब रही है। जल्दी इन्हें हॉस्पिटल ले चलो मैं ने कहा ''बस बेटा आज का ही इन्तजार था, तुम्हारी वापसी हो गयी और मुझे अब क्या चाहिए।, बस अब चलता हूँ''।

सूरज ने कहा, ''कुछ नहीं होगा आपको माइल्ड हॉर्ट अटैक आया है। सब ठीक हो जायेगा।''

भारद्वाज जी ने जल्दी से आश्रम के एम्बुलेंस का इंतजाम किया और मुझे उसमें लिटाकर शहर के एक हार्ट हॉस्पिटल की ओर चल पड़ें।

।।। एक नयी शुरूआत ।।।

हॉस्पिटल आ गया था, मुझे स्ट्रेचर पर ऑपरेशन थिएटर के भीतर ले जाया जा रहा था, मैंने चारों तरफ सभी को देखा। मुझे खुशी थी। अमृत वृद्धाश्रम अब बेहतर हाथों में था। अमृत लाल जी का और मेरा सपना सच हो गया था। मैंने सभी को प्रणाम किया और भीरत की ओर चल पड़ा। अब सब ठीक हो गया था। अब कोई दुःख मन में नहीं था। मुझे यकीन था कि मैं भी ठीक हो जाउंगा, फिर से अपने अमृत वृद्धाश्रम की सेवा करने के लिए।

कहानी

बरस बीत गया

हिमांशु जोशी
मयुर बिहार, नई दिल्ली

पर यहाँ भी लगता नहीं सुमन का मन! जब से आयी है, बुझी–बुझी सी रहती है। डाक्टर कहते हैं– '' बढ़ने की बजाय तुम्हारा 'वेट' दिन–पर –दिन घट रहा है। सभी तो टहलने –घुमने जाती हैं , फिर तुम क्यों नहीं जाती?समय पर दवा क्यों नहीं लेती ?किसी से बातें क्यों नहीं करती? बोलने से मन हल्का रहता है... ।''

लेकिन वह सुनी–अनसूनी कर देती है।

हर हफ्ते मां का खत आता है। एक ही बात हर बार दुहराई जाती है। बाबू जी डॉक्टर भंडारी से रिपोर्ट मांगते हैं, एक्स–रे की काली –काली प्लेटें भी और फिर लौटती डाक से लंबे पत्र भेजते हैं, जिनमें साइकोलॉजिक्ल ट्रीटमेंट की बाते रहती हैं और उबाने वाली जिरहें भी। बाबू जी स्वयं डॉक्टर नहीं, फिर डॉक्टरों की हर बात का पोस्टमार्टम क्यों करते हैं? शायद इसलिए न कि वे सूझ–बूझ वाले वकील कहे जाते हैं। न मालूम क्यों, अज्जू हर महीने अपने जेब–खर्च से पैसे बचाकर भेजता है। अन्त में लिखता है– बाबू जी फिकर न करना, जिज्जी। छुट्टियों में एक बार जरूर आऊंगा। जब से तुम गई हो , घर सूना–सूना लगता है। कहो तो कुछ किताबें भेज दूं, इंटरेस्टिंग हैं। ... इन्दर भैया चिट्ठी नहीं भेजते । लेकिन हां भाभी ने एक चंदेरी की साड़ी भेजी थी– पता नहीं क्या सोचकर!

उसकी आंखें धुंधला गई हैं। स्पष्ट कुछ दीखता नहीं। वह केवल अंगुलियों पर गिन–गिनकर कुछ घटाती–बढ़ाती है। बरस पूरा होने में अभी कुछ कितना समय शेष है।

खाये–खोये –से बूढ़े ताऊजी (ठाकुर साहब) उस दिन पिंडदान करेंगे। उसे ख्याल आता है कि कोसी ताई भोर से पहले ही जागकर नहा–धोकर गो–ग्रास देंगी। उनकी आंखों में सांझ के झुलसे बादलों की बुझती लाली होगी।

ताऊजी अपना एक हाथ दूसरे हाथ पर धरकर ,गहरी सांस भरकर दूर कहीं ढूँढने लगेंगे– अनन्त की मां, हमारा अनन्त मरकर भी अमर हो गया । तू रो–रोकर उसकी आत्मा को दुख क्यों देती है?फिर अपने आप बुदबदाएंगे। स्वयं से बातें करने लगेंगे.... बैरी निकला पूरब जनम का। इस बुढ़ापे में आके आज यह दिन भी देखना पड़ा... ।

''सच कहते हो, अनन्त भैया, तुम्हें कभी हिचकी लगती है? परेड रोज करते हो?''

''हां। ''

''पहाड़ों पर भी चढ़ते हो?''

''हां!''

'' तो बहुत थक जाते होगे न! घुटनों में दर्द होता होगा?''

वह सिर हिलाकर उसकी ओर देखता है।

'' जब तुम थककर , चूर होकर...'' कहती–कहती वह अटक–सी जाती है, ''तब एक क्षण के लिए .... ।''

''क्या!''

''कुछ भी तो नहीं।'' कहकर वह अपने आप अकारण हंसने लगती है, ''सच्ची, मैं कभी –कभी पगला जाती हूँ। एकांत में घंटों बैठी–बैठी पता नहीं क्या–क्या सोचती रहती हूँ कभी तो यों ही आंखों में जल छलक आता है। तुम भी बड़े 'वो' हो। मुझे चिट्ठी में ''कैट '' क्यों लिखा .... ?पान नहीं लोगे''

''न ।''

''क्यों .....?पहले तो रोज लेते थे।''

''अब छोड़ दिया। दांत खराब हो जाते हैं न! कैडेट लोग...''

''कैडेट लोग क्या आदमी नहीं होते ?''

''आदमी तो होते हैं , लेकिन जानवर नहीं होते। घास–पात नहीं चबाते ... ।''

सुमन आज भी अपनी हार पर तिलमिलाती नहीं , खुश होती है। इतने लम्बे अर्से बाद जब से अनन्त आया है, सुमन भी कुछ बदल– सी गई है। कभी तो एकदम गंभीर बन जाती है। कभी 'ऐजेड– सी' लगती है।

एक गिलोरी वह उसकी ओर बढ़ाती है– ''प्लीऽ ऽज!'' बिना किसी प्रतिरोध के अनन्त पान मुंह में डाल लेता है।

''देहरादून में पान की दुकानें नहीं होतीं?''

''होती क्यों नहीं! बहुत दुकानें हैं। कभी चल के देखना।'

'' मुझे देहरादून बहुत अच्छा लगता है।''

''तूने कब देखा ?'

''देखा तो नहीं, बस यों ही । बिना देखे भी बहुत सी चीजें अच्छी लगने लगती हैं न।'' वे दुकान से दूर चले जाते हैं।

'' मुझे इसी पिछले महीने एक 'लव–लेटर मिला था।'' सुमन अपने –आप कहती है ,जैसे स्वयं को सुना रही हो।

''कहां से ?''

'' हमारे एक क्लासफेलो ने भेजा था।''

''क्या लिखा था?''

'' बड़ी मजेदार बातें थी। ''

''तो तुम्हें गुस्सा आया होगा?''

'' गुस्सा भी नहीं आया। सच, कुछ भी नहीं हुआ– सच्ची।''

'' बड़ी अजीब हो तुम–कुछ भी नहीं हुआ।''

उसके बाद अनन्त दो–तीन बार दिल्ली आया था। लेकिन ट्रेनिंग पूरी करके जब वह हफ्ते –भर के ज्वॉइनिंग –टाइम में यहीं दिल्ली से होकर गया था, तब वह अजमेर वाली नानी के साथ पुष्कर गई थी, जहां उसने रेत में दौड़ते ऊंटों को पहली बार देखा था।

लौटने पर अम्मा ने बतलाया था– '' अनन्त रंगीन तस्वीर खींचने वाला कैमरा लाया था। तेरे कमरे से तेरा अलबम उठा ले गया , कहता था कुछ और रंगीन तस्वीरें इसमें लगा दूँ । मेरे पास पड़ी–पड़ी बेकार हो जाएंगी। न जाने कहां–कहां जाना पड़े। फिर उन्हें मैं कहां फिराता रहूँगा। ''

सुमन अलबम खोलती है। हाई स्कूल के इम्तिहान के लिए फोटो खिंचाई थी। पासपोर्ट साईज की, उनमें एक कम थी। उसके बदले छः–सात नई रंगीन तश्वीरें थीं।कुछ फोटो जिनकी पीठ पर बड़े– बड़े अक्षरों में 'ए' लिखा था..... अंग्रेजी का 'अ'।

तभी दो– तीन महीने बाद अनन्त का एक छोटा सा पत्र आया था। कुछ भी वो नहीं लिखा था। सब जगह भरनेवाली बातें थीं– स्कूल रोज जाया करो, 'एक्जाम के बाद क्या सोचा है?पान खाया करो। मैं ठीक हूं। तुम ठीक होगी।

उसके पश्चात् वह मैट्रिक पास भी हो गई। तब भी शायद कोई खत था। फिर लम्बे अर्से तक कुछ भी नहीं, फिर एक लम्बा पत्र ...।

वह अंगुलियों में हिसाब लगाती है। सम्भवतः वही पत्र था। उसके बाद तो....।!

''दिसम्बर में मेरा साल पूरा हो जाएगा। तब लम्बी छुट्टियों में घर आऊंगा। जांड़ो में बरफ देखने नैनीताल जाने को सोचता हूं। तुम भी चलोगी न। मैंने तो डिसाइड कर लिया है। अच्छा , बतलाओ, मैं तुम्हें मुफ्त में लेफ्टिनेंट की बीबी बना दूं तो क्या इनाम दोगी?''

जब अनन्त पहली बार देहरादून से आया और खूब बढ़ चढकर मिलिट्री वालों की बड़ाई करने लगा था तो उसने कहा था– मुझे मिलिट्री वाले अच्छे नहीं लगते। बड़े 'रफ 'होते हैं , अनन्त।''

''होंगे ....। '' तटस्थ भाव से अनन्त ने देखा था, '' अच्छा एक बात बता । तू पागलों की तरह बाल क्यों बिखेरे रहती है हरदम? जूड़ा क्यों नहीं बांधती? साड़ी के साथ मैच करता ब्लाउज क्यों नहीं पहनती?लेफ्टिनेंट साहब को ऐसे लोग पसन्द नहीं! सुनो जाओ और फिट होकर आओ। पिक्चर चलेंगे।''

वह दरवाजे पर ठिठक पड़ती है–'' हमें भी ऐसे लोग कहाँ पसन्द है?। बाबा, हमें टीचरी करनी है, नौकरी तो कहीं दिला दोंगे न?

''नौकरी ही करनी है तो लेफ्टिनेंट साहब की करो– दस रूपये, कपड़ा लत्ता, खाना–पीना।''

सुमन तुनक कर जीभ काटती है– '' दऽसऽ रूऽप–ऽयेऽऽ ।... खाऽना– पीनाऽ। शरम नहीं आती किसी शरीफ लड़की को ऐसे कहते।''

अनन्त उसके बिखरे वालों को खीचता है। ''शऽऽरीऽऽफ.... ।''

''छोड़ो भी, 'ब्रूट' कहीं के। सारे बाल उतार दिए। एकेडेमी वाले क्या तुम्हें ऐसी ही ट्रेनिंग देते हैं। सिंदूरी चेहरा आंचल से पोंछकर वह ओझल हो जाती है।

वह अलबम सुमन यहां भी अपने साथ लायी है। कभी घंटों तक उसी ओर पता नहीं क्या–क्या देखती रहती है।

इन भिंची–भिंची दीवारों के बीच उसका दम घुटने सा लगा। दवा की तमाम बिखरी शीशियों में बदबू सी आने लगी। जी मिचल आया। वह हौले से उठकर बैठ गई। पांवों में बिना स्लीपर डाले ही बरामदे में चली गई। एक खम्भे के सहारे खड़ी हो गई।

पिछले सात दिनों से लगातार चली आ रही झड़ी के सिमटने पर भी आसमान गंदले तालाब की तरह मैला है। दिन–रात जब देखो कुहासा ही कुहासा। पानी ही पानी। सीलन ही सीलन। कपड़ों में से गंध आने लगती है। लोग तो कहते हैं– '' बहुत अच्छी जगह है यह।''

''सिस्टर, क्या यहां हमेशा ऐसा ही रहेगा?

सिस्टर सामने से आती है और सधे पांवों से खट् खट् करती दूर निकल जाती है। । उसके दोनों हाथों में बहुत सी शीशियां है। वह ऑपरेशन –रूम की ओर जा रही है। कुछ कदम चलते ही वह मुड़कर देखती है और मुस्कराती है। सिस्टर की यह मुस्कराहट उसे कभी अच्छी नहीं लगती।

कभी कभी दवा पिलाती हुई शरारती सिस्टर उसकी संगमरमर सी सफेद नाजुक अंगुलियों को सहलाती हुई जोर से दबाती है– ''डार्लिंग , यू आर सो चार्मिंग ऽऽ ..।'' फिर सधे पांवों से इसी तरह खट्–खट् चलने लगती है। दूर पहुंचकर देखती है और बड़े अश्लील ढंग से मुस्कुरा देती है।

उसके बांए पांव में कुछ सूजन है। चलते समय लचकता है। खड़े होने पर तकलीफ होने लगती है। वह पास पड़ी वेंत की कुर्सी खींचती है। होले–से इस तरह बैठती है कि कहीं धंस न जाए। जंगले के सहारे झुककर दोनों हथेलियों से

ठोड़ी थाम लेती है– ऐसे ही कभी अपनी खिड़की पर बैठा करती थीं – घंटों तक ... ।

डाकिया नाराज है। अनन्त की चिट्ठी नहीं लाता । ताऊजी उदास रहते हैं। ताई कभी दुपहरी में अम्मा के पास बैठती है, तो ढुल–ढुल रोने लगती है। उसे भी इधर पता नहीं क्या हो गया है। वह अकारण परेशान रहती है उस पर अम्मा की आवाज आती रहती है– ''सुमी, कहां चली जाती है तु! इन्दर कब से चाय के लिए चिल्ला रहा है। देख, आज महरीं नहीं आयी। जरा चौका ही साफ कर दे। चाय मैं उबाल लूंगी।

''मां.... । सुमन तुनककर कहती है 'तुम दिन–रात चौके–चौके की बातें किया करती हो। कुछ पता भी है, यहां एक के बाद एक चौकियां हाथ से निकलती जा रही है। लगातार डिफीट हो रही है। देश की प्रेस्टीज दांव पर लगी है और ...तुमऽ।

मां चुप हो जाती है – अपनी पुरानी आदत के आनुसार । और बिना अधिक हील– हुज्जत किए काम पर जुट जाती है।

उस पर शोरगुल सा सुनाई देता है। एक जगह पर बहुत बड़ी भीड़ एकट्ठी दिखलाई देती है। सड़क पर ट्रैफिक रूक गया है। सांस रोके सब सुन रहे है। ढोला चौकी ... कल रात की लगातार भयंकर गोलाबारी के बाद .. . हमारी सेनाएं मजबूती से मोर्चा संभालने के लिए ..... ।

ताऊजी की आंखों का रंग सफेद हो जाता है। ताई से खाना नहीं खाया जाता।

बाबूजी उड़े–उड़े से रहते हैं। घुटने पर घुटना टिकाए , गर्दन ईजी –चेयर पर ढुलकाए सिगार का गहरा कश खींचते हैं–'' आज गलत पैरवी पर बैठा, रायसाहब ! जज भी उल्टा डिसीजन दे गया..... । सुम्मी ,तू दिन–रात रेडियो से क्यों चिपकी रहती है?भई ,स्कूल की पढ़ाई–लिखाई भी चौपट हो गई.... । अरे!हा! खबर क्या है, बेटा , वालौंग का क्या बना... । ऐसा क्राइसिस यार जिन्दगी में नहीं देखा। तीन दिन से नींद नहीं आ पा रही है। डिफेन्स अब बिना फॉरिन एड के चल नहीं सकता। क्या करें?

घर में अब अधिकतर सन्नाटा रहता है। खाते–खाते अम्मा का हाथ रूक जाता है– '' सामने के ठेकेदार साहब को तो देखो, एक ही लड़का है, वह भी पलटन में।''

''च्चऽऽ, पलटन में होने से क्या हुआ! हम तो इन्दर को भी भेजने की सोचते हैं... इन्दर की मां आफ्टर ऑल, नेशन इज नेशन.... ।''

मां 'वर्णमाला ' के अक्षरों से अधिक पढ़ी–लिखी नहीं। इसलिए अंग्रेजी के शब्द समझ में नहीं आते। पिता जी के सामने वैसे ही कम बोलती हैं। पर पिताजी पता नहीं सरकार की किस पॉलिसी के बारे में क्या–क्या करते रहते हैं। अम्मा बेचारी सिर हिलाती रहती है, जैसे सब जानती हों।

''सुम्मी!'' मां मौका देखते ही फिर सामने की ओर देखती है–'' जा, जरा ठाकुर साहब के घर ट्रे में चाय दे आ । सुना है, उनका नौकर भी भाग गया .... । फिर वह पिताजी के चेहरे की ओर ताकती है– क्यों जी, कोई खबर नहीं आयी उनके अनन्त की ?''

दस–बारह दिन भी बीत नहीं पाते कि भद्दू कन्धे में झाड़न लटकाए दबे पांव आता है। बाबूजी कानून की किताबों में डूबे हैं।

''स ...र ...काऽऽर!''

बाबूजी गरदन ऊपर नहीं उठाते। अंगुली की नोक से जीभ से छुआकर पन्ना पलटते हैं और पुस्तक चिन्ह की तरह बीच में एक अंगुली रख देते हैं।

'' ठाकोर साहेब के घर ताला लटक रहो, सरकार!''

'' हां! बाबूजी जैसे नींद से जागते हैं, ''कौन ठाकुर साहब?''

''वही , जो पड़ोस में रहात रहे हैं– अनन्त लल्ला के बाबा!''

''क्यों?क्यों?

''सुनत रहाते है सदौसी से हरदुवार चले गईन।''

''क्यों?''

''आपन को पता नहीं, सरकार! कहत हैं लॉज में कछु कपड़े–लत्ते आहत रहन। तार–सार आहत रहन।''

बाबूजी की पलकें खुली–की खुली रह जाती हैं। चेहरे पर भारी तनाव –सा आता है। माथे की सलवटें गहरी हो जाती हैं– ''हे भगवान!''

–तुझे क्या हो गया सुम्मी! खाना क्यों नहीं खाती?

–तू एकांत में क्यों बैठी रहती है?

–तुझे देखते ही डर सा लगता है।

– दो चार ही दिन में तुझे क्या हो गया है। दिन–रात तुझे फीवर रहता है। डाक्टर कहते है कि ..... ।

तुम बोलता क्यों नहीं?'' डॉक्टर घोषाल चेतावनी देते हैं– अगर्चे बोलना नहीं.... हँसना नहीं... बाबा, हार्ट पर बुरा अफेक्ट पड़ना मांगेगा।''

मां लिपट पड़ती हैं–'' तुझे क्या हो गया बिट्टो?''

सुमन की जीभ सुखकर तालू से चिपक गई है ।वह गुमसुम बैठी रहती है। आंखें खोले भी उसे कुछ दीखता नहीं।

सड़कों की भीड़ में एक आतंक का भाव है। सामने घर की गली की ओर खुलने वाली चौड़ी खिड़की अब फिर खुली

रहती है। ठाकुर साहब के दोनों हाथ घुटे कपाल पर चिपके रहते हैं। रेडियो ही जैसे उनके लिए एकमात्र सहारा रह गया हो।

''अनन्त की अम्मा, मुझे तार की खबर गलत मालूम होती है। इतनी बड़ी पलटन में एक ही नाम के क्या और नहीं हो सकते ...?गफलत भी हो सकती है.. ।''

ताई से कुछ कहा नहीं जाता। रोया नहीं जाता। वह ठगी–ठगी सी हवा में तैरने लगती है– कपड़े भी आपने बहा डाले मेरे अनन्त के। कोई तो याद रहने देते उसकी।

ताई बक्से में से निकाल–निकालकर वे गहने सबको दिखलाया करती हैं जो अभी कुछ महीने पहले उन्होंनें अपनी होने वाली बहु के लिए खरीदे थे और वह कीमती सिल्क की नारंगी साड़ी भी दिखलाना नहीं भूलती जो बनारस से वह खुद खरीदकर लायी थी ..... ।

सुमन के नंगे पांव सीमेंट के ठंडे फर्श पर जम–से गए हैं। सारे पांव में एक झुनझुनी–सी उठती है, जैसे अनगिनत सुईयां एक साथ चुभ गई हो।

उसने घुटने को मोड़कर अंगुलियों को छुआ जो एकदम वर्फ की तरह ठंडी लगती है। हाथ अंगुलियों पर देर तक धरा– का – धरा रह गया। नाखुनों का रंग कुछ –कुछ सफेद –सा हो आया है। अंगूठे की बगल वाली अंगुली उसने बिना देखे ही सहलाई – अंगूठे से जो कुछ–कुछ लम्बी है।

''वे जल्दी मर जाते हैं, सुमन।'' अनन्त बड़े चिन्तित स्वर में कहता है '' जिनकी यह अंगुली अंगूठे से बड़ी होती है। चंचल दी की अंगुली भी ठीक तेरी तरह थी न। तभी तो वह जल्दी मर गई।''

कौन जल्दी मरता है, कौन बाद में.... । वह बालकोनी की तिरछी पट्टी पर माथा टिका देती है। पता नहीं, कब ड्यूटी नर्स आती है, उसका हाथ थामें कमरे में लिटा देती है, '' दवा आज फिर नहीं ली तुमने।''

डॉ0 अशरफ ठिठक पड़ते हैं – फल पड़े – पड़े खराब हो गए! बड़ी झुंझलाहट होती है उन्हें।

सुमन की खामोश निगाहें कहीं दूर गहरे में टिकी हैं।

'' तुम अपने को चेंज करो, नहीं तो इलाज से कोई फायदा नहीं होने को।'' डॉ0 अशरफ जैसे अंतिम वार्निंग दे रहे हों। ''तुम्हारे फादर कितने चिंतित हैं। मदर बीमार रहती है। तुम्हारे कारण।.. इस तरह तुम कब तक जिंदा रह सकोगी। –आई काण्ट से ..... ।''

डॉक्टर का वाक्य पूरा होने से पहले ही वह दवा की कड़वी घूंट चुपचाप गटक जाती है। डॉ0 अशरफ मुस्करा उठते हैं। उसके कन्धों को थपथपाते हैं– ''यू आर सो इमोशनल'' फिर उसके चेहरे की ओर देखते हैं– डॉक्टर भंडारी की रिलेटिव हो ना?

वह सिर हिलाती है।

'' ही टोल्ड मी एबाउट यू।'' वह कुछ सोचते हुए कहते हैं – ''अच्छा, देखो, कल से जरा टहला करो, अच्छा! ... खाली समय में रेडियों सुनो। मैगजीन पढ़ लिया करो। थोड़ी –बहुत बातचीत से कोई हर्जा नहीं। सोचने से बिमारी बढ़ती हैं।''

गले में आला लटकाए डॉक्टर ठीक कहते हैं। उसे अपने को चेंज करना चाहिए... । इधर उसे मृत्यु से भय–सा लगने लगता है। वह पांव फैलाए एक लम्बे समय तक इसी तरह पड़ी रहती है। किताब पढ़ती है। फिर रेडियो लगाती है, पर चैन मिलता नहीं। फिर नर्स से बातें करती है... थोड़ी ही देर में उसका सिर भारी हो आता है।

जब कुछ नहीं सूझता तो यों ही पलंग के नीचे कागजों को टटोलती है। कोई एक अखबार हाथ लगता है। उसे आश्चर्य होता है। कितने लंबे समय से उसने अखबार की सूरत तक नहीं देखी... ।

संयुक्त हवाई अभ्यास की कुछ खबरों के बाद किसी विदेशी नेता का भाषण ... वह पहला पन्ना ही पलटती है कि काली लकीरों से घिरे एक चौखटे पर निगाहें अटक जाती है। पेपर को बिल्कुल निकट लाकर पढ़ती है–

'' अपने इकलौते बेटे लेफ्टिनेंट अनन्त की याद में ... जो गत दस नवम्बर को वालौंग के मोर्चे पर शत्रुओं से लड़ते–लड़ते वीरगति को प्राप्त हुआ था ... उसके बूढ़े माता–पिता उसे हर क्षण याद करते हैं। वह जहां कहीं भी हो, सुखी रहो।''

सुमन की आंखे मिच जाती है। पलकों से टप्–टप् लाल आंसू टपकने लगते हैं–आज लगा सचमुच बरस बीत गया।

आलेख

हमारी संस्कृत और संस्कृति

दयानंद जायसवाल
भागलपुर
मो0 9931240303

संस्कृत भारत की अपनी मूल भाषा है। जिसका ''देववाणी'' दूसरा नाम अपनी अति प्राचीनता का द्योतक है। भारत के साहित्यिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, और राजनीतिक जीवन की पूरी व्याख्या संस्कृत भाषा के वाड्गमय में समाविष्ट है। वेदों के अति गंभीर एवं रहस्यमय ज्ञान से लेकर सामान्य जन–जीवन में मनोविनोद से संबंधित 'पंचतंत्र' की कथाओं तक जितना भी साहित्य वैभव विद्यमान है, वह सब संस्कृत भाषा में ही सुरक्षित है। निग्रो से लेकर आर्य जाति तक जितनी भी विभिन्न जातियां भारत में प्रविष्ट हुई, वे सब औष्ट्रिक (आग्नेय), द्रविड़ और हिन्द–युरोपियन इन तीन नस्लों में विलयित हो गई और इन्हीं सम्मिलित जातियों के द्वारा संस्कृत भाषा का निर्माण हआ । प्राचीन काल में यह संस्कृत अव्याकृत थी, प्रकृति–प्रत्यय आदि के विभागों से रहित थी। जिज्ञासुओं को कठिन परिश्रम करना पड़ता था। इस हेतु देवों ने परम शब्द वेत्ता विद्वान इन्द्र के निकट जाकर प्रार्थना की कि वे अध्ययन की कुछ वैज्ञानिक परिपाटी सुझाएँ । देवराज ने देवताओं एवं तत्कालीन अध्येताओं की इस कठिनाई का गम्भीरतापूर्वक हृदयंगम किया। उन्होंने देवभाषा में अध्ययन की सरल, सुगम प्रक्रिया का निर्माण किया। इसी प्रकृति प्रत्ययादि विभाग के पुनः संस्कार द्वारा संस्कृत होने से देववाणी का नाम ''संस्कृत पड़ा''। बाद में बाल्मीकि , पाणिनि, भरत और दण्डी प्रभृति संस्कृत के प्राणभूत कवियों, वैयाकरणों और आचार्यो ने संस्कृत का प्रयोग इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर किया। संस्कार पर आधारित व्याकरण की इस प्रकृति का पूर्ण विकास हो जाने पर ही पवित्र (संस्कृत) ग्रंथों की भाषा का नाम 'संस्कृत' हुआ। 200ई0 पूर्व पतंजलि के समय तक संस्कृत बोल–चाल की भाषा बनी रही, उसके बाद यह केवल शिष्ट समाज तक ही सिमट कर रह गई; शिष्ट समाज ने भी दूसरी भाषाओं की भांति बोल–चाल की प्रशाखा या एक उपभाषा बना डाली।

संस्कृत ने अपने अस्तित्व को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए दो बातों को अपने साथ रखा पहले तो उसने शब्दों तथा व्याकरण के बाहरी रूपों को अपने से दूर होने नहीं दिया और दूसरे में मध्यकालीन आर्य भाषा के वाक्य–विन्यास एवं शब्दाबली का अनुशरण करना उसने पूर्ववत स्थाई रखा। संस्कृत–साहित्य के ओर–छोर तक भाषा, विचार, रचना शैली की जो भिन्नता प्रतीत होती है, उसका कारण उसकी सतत विकासोन्मुख प्रकृति ही है। वस्तुतः संस्कृत का शब्द भंडार अक्षय और अनन्त है। विभिन्न अवस्थाओं प्रसंगाभाव एवं रस आदि का वर्णन करने के लिए तदनुकूल वर्णों, शब्दों का क्रियाओं के प्रयुक्त करने की सुविधा एक मात्र संस्कृत भाषा में है। केवल भाषा की दृष्टि से ही नहीं, साहित्य की दृष्टि से भी , संस्कृत साहित्य का विश्व साहित्य में अपना उल्लेखनीय स्थान है। ऐतिहासिक अनुशीलन से स्पष्ट हो जाता है कि अन्य देशों में संस्कृत प्राचीन भारतीय सभ्यता व संस्कृति का प्रसार रहा है। संस्कृति का निर्माण हमारे धर्म की चरमोन्नति का सूचक है। धर्मशास्त्र उसको कहते हैं; जिसमें राजा प्रजा के अधिकार, कर्तव्य, सामाजिक आचार विचार, व्यवस्था, वर्णाश्रम धर्म, नीति, सदाचार और शासन संबंधी संस्कारों की परम्परा बहुत प्रचीन है। वैदिक संहिताओं का एक बहुत बड़ा भाग इन्हीं धर्म–कर्म और आचार–विचार विषयक बातों का ही प्रतिपादन करता है। सारा वैदिक युग धर्म प्रधान एवं आचार प्रधान रहा है। हिन्दू समाज की रचना जिस प्रकार आर्य और आर्योत्तर अनेक जातियों के समन्वय से पूरी हुई, उसी प्रकार उसका धर्म और उसकी संस्कृति के उद्गम स्थल भी अनेक रहे हैं। असल में हजरत ईसा ने जैसे ईसाइयत को और हजरत मुहम्मद ने जैसे इस्लाम को जन्म दिया, हिन्दू धर्म ठीक उसी प्रकार, किसी एक पुरूष की रचना नहीं है। यही कारण है कि अगर आप किसी हिन्दू से यह पूछें कि तुम्हारा धर्म–ग्रंथ कौन सा है?तो सहसा कोई नाम नहीं बता सकेगा। इसी प्रकार यदि आप उससे यह प्रश्न करें कि तुम्हारा अवतार, मुख्य धार्मिक नेता, नवी या पैगम्बर कौन है तब भी किसी एक अवतार या महात्मा का नाम उससे लेते नहीं बनेगा।

हमारी पवित्र स्मृतियाँ और संस्कृति इसी लम्बी परम्परा का जीवन्त रूप है। भारतीय जीवन के सुदीर्घकालीन नियमों को क्रमबद्ध रूप में संकलित करने का कार्य स्मृतियों ने किया। सैकड़ो वर्षों के कठिन अन्वेषणों के परिणाम स्वरूप समाज की सुव्यवस्था के लिए जो नियम निर्वाहित होते हुए चले आ रहे थे उनपर स्मृतियों ने संस्कृति का मुहर लगाकर अंतिम रूप प्रमाणित कर दिया। ग्रीक जाति के डेढ़ सौ वर्षों तक के लम्बे शासन ने भारतीय संस्कृति और साहित्य को अत्याधिक प्रभावित और प्रोत्साहित किया। भारतीय कला और ज्योतिष के क्षेत्र में ग्रीकों का प्रभाव अवश्य उल्लेखनीय है। वास्तुकला और तक्षणकला के जो नमूने ग्रीक कला के अनुकरण पर निर्मित

मिलते हैं, उनमें प्रथम शताब्दी ई0 पूर्व के तक्षशिला में निर्मित एक देव मंदिर के ऊँचे 'यवन स्तम्भ'और कुछ भवन उल्लेखनीय है। गंधार शैली की भारतीय कलाकारों की आकृतियों में भगवान बुद्ध की जीवन घटनाओं से संबंधित प्रस्तर–उत्कीर्ण, पेशावर , लाहौर, पंजाब राज्य और शिमला के संग्रहालयों में ग्रीक अनुकरण की कलाकृतियाँ तथा मूर्त्तियाँ अभी भी सुरक्षित हैं। कुषाण कालीन संस्कृति को सम्राट कनिष्क ने बौद्ध–बिहारों के निर्माण से सजाया तथा भव्य स्तूप और बड़े–बड़े नगरों की स्थापना से सँवारा।

भारतीय संस्कृति में पौराणिक युग का आविर्भाव एक नई दिशा सूचक रहा है। अनेक जातियाँ के समागम के कारण भारतीय सभ्यता और संस्कृति में जो महान परिवर्तन आ उपस्थित हुआ था, वह समय और समाज की आवश्यकता थी। इस परिवर्तन की प्रतिक्रिया न केवल तत्कालीन धरातल को बदलने तक ही सीमित रहीं, वरन आध्यात्मिक जीवन की मान्यताओं में भी उसके कारण जबर्दस्त तब्दीली हुई। इस प्रगतिशील पौराणिक समाज ने न केवल वेदोक्त दैवी स्थापनाओं को ही अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तित किया, प्रत्युत, आचार– विचार , धर्म, अनुष्ठान, व्रत, पूजा आदि के कर्म क्षेत्र में भी सैकड़ों नई मान्यताओं को जन्म दिया । धार्मिक भारतीय आचारशास्त्र और दर्शनशास्त्र के विश्वकोष हैं। उनमें वे बीज विखरे हुए हैं , जिनसे कालान्तर में भारतीय संस्कृति का विशाल वट–वृक्ष उगा और फूला–फला। उनमें जिस विराट संस्कृति और पुरातन इतिहास के बीज बिखरे हुए हैं, उनको एक स्थान पर समेट कर उनका परीक्षण किया जाना चाहिए।

श्रमण प्रधान जैनधर्म से बौद्ध धर्म की मौलिक एकता है। यही कारण था कि बहुत दिनों तक यूरोप में इन दोनों का धर्म माना जाता और इसी दृष्टि से कुछ विद्वानों ने महावीर और बुद्ध को एक ही व्यक्ति समझने का भ्रम किया। श्रमण संस्कृति का प्रवर्तक जैनधर्म प्रागैतिहासिक धर्म रहा है। मोहनजोदड़ों से उपलब्ध ध्यानस्थ नग्न योगियों की मूर्तियों से जैनधर्म की अतिप्राचीनता सिद्ध होती है। मध्य एशिया के चीन आदि देशों पर भारतीय संस्कृति और बौद्धधर्म की जो छाप है, वह सर्वविदित है। कोरिया की लिपि भी भारतीय लिपि पर आश्रित है। तिब्बत भारतीय धर्म और साधना का चिरकाल से क्षेत्र रहा है।अफगानिस्तान , इरान आदि अपने–अपने निकटवर्ती पश्चिमी देशों की संस्कृति के समान ही थी, और आज भी खुदाई करने पर वहाँ पुरातत्वविदों ने मंदिरों और मूर्तियों के भग्नावशेष प्राप्त किये हैं। प्रतिमावाचक शब्द बुत, संस्कृत शब्द बुद्ध का ही फारसी रूप है।

इस प्रकार संस्कृत भाषा और भारतीय संस्कृति का महत्व स्पष्ट हो जाता है; पर कुछ लोग संस्कृत को मृत और इस संस्कृति को प्रचीन कहकर उसे अवहेलना की दृष्टि से देखते हैं लेकिन विचारपूर्वक देखने पर इस प्रकार का संकीर्ण दृष्टिकोण उचित नहीं जान पड़ता। संस्कृत साहित्य की बिखरी हुई अनेक सुक्तियाँ व्यवहार में प्रतिदिन प्रयुक्त होती रहती है। यह दूसरों को जीवन प्रदान करने की क्षमता रखती है। यहाँ की उत्कृष्ट संस्कृति जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैंड, अमेरिका आदि पाश्चात्य देशों के मनीषियों को अपनी ओर आकृष्ट करती है। यदि इस पृथ्वी तल पर कोई ऐसा देश और ऐसी संस्कृति है तो वह देश भारत एवं संस्कृति भारतीय; जहाँ ईश्वरोन्मुख प्रत्येक आत्मा का अपना अन्तिम लक्ष्य प्राप्त करने के लिए पहुँचना अनिवार्य है; जहाँ साधना–भूमि है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने कर्ता के आवरण को फेंककर अजर–अमर, आदि –अन्त रहित आत्मा का साक्षात्कार कर सकता है। अन्य देशों के बड़े पादरी–पुरोहित भी अपने वंश परम्परा को किसी राजा से, उच्चतम राजनीतिज्ञों से जोड़ने का प्रयास करते हैं यह उसकी संस्कृति है, किन्तु यहाँ बड़े–से–बड़ा सम्राट भी वनों में रहने वाले अर्द्धनग्न सन्यासियों से अपने को जोड़ा है। यह हमारी संस्कृति है कि हम प्राचीन ऋषि का वंशज कहने में गौरव अनुभव करते हैं।

19वीं शताब्दी के आरम्भ से जब पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव भारत पर पड़ना शुरू हुआ तब पाश्चात्य विजेता हाथ में कृपाण धारण कर ऋषियों के वंशजों को समझाने आये कि तुम्हारे आचार –विचार निरे अन्धविश्वास पर आधारित केवल पौराणिक गपोड़बाजी है। इस अल्प जागृति के फलस्वरूप आधुनिक भारत में मुक्त और मौलिक चिन्तन का सामासिक उदय होने लगा । अद्वितीय शौर्य, अतिमानव प्रतिभा और चरम आध्यात्मिकता से सामासिक संस्कृति आगे आने लगी; सामने पश्चिम से आयी विविध–विचित्र विलास सामग्री विखरी मिली– ये उत्कृष्ट पेय, ये सुन्दर स्वादिष्ट भोजन, ये तड़क–भड़कदार वस्त्र, शानदार अट्टालिकाएँ, नये युग के वाहन, नये शिष्टाचार और नये–नये फैशन, जिसमें सज–धजकर सुशिक्षित युवावर्ग निर्लज्जतापूर्वक पूर्ण स्वच्छन्दता का अधिकार माँगते फिरते हैं।

एक ओर , नया भारत कहता है, ''पाश्चात्य भाव, पाश्चात्य भाषा, पाश्चात्य खान–पान और पाश्चात्य संस्कृति को अपनाकर ही हम पाश्चात्य राष्ट्रों के समान शक्तिशाली हो सकेंगे'', दूसरी ओर पुराना भारत कहता है, '' हे मूर्ख् कहीं नकल करने से भी दूसरों का भाव अपना हुआ है?क्या सिंह की खाल ओढ़कर गधा भी सिंह बन सकता है? बिजली की चमक बहुत तेज होती है, किन्तु क्षणिक होती है। आँखे खोलिए, आपकी आँखे उससे चौंधिया गई है, किन्तु सावधान।

गजल

बेवफा नहीं लेकिन

अभिनव अरूण
महमूरगंज, वाराणसी
मो०–9415678748

अंधेरी रात है किरणें सुबह की लाओ भी
सितारों स्वप्न सुनहरे मुझे दिखाओ भी
भला भला सा मुहूरत निकल न जाए कहीं
उनींदें सूर्य को शबनम छिड़क जगाओ भी
निकल के आओ कभी यादों के घरौंदे से
उबलती धूप में साँकल कभी बजाओ भी
फलक का प्यार है पर्वत से गिर रहा झरना
उदास क्यों हो ज़मी तुम नज़र उठाओ भी
हमें यकीन है तुम बेवफा नहीं लेकिन
हमारे वास्ते छत पर निकल के आओ भी
नज़ारे देख रहा है ज़माना उत्फ़त का
हमारा नाम लिखो रेत पर मिटाओ भी
नहीं है हित में किसी की नाव तट पे रही
भंवर का नए नया सिलसिला चलाओ भी
मैं चाहता हूँ गज़ल में जिगर का खून भी हो
मुझे रक़ीब से मेरे कभी मिलाओ भी
सियाह रात में देखो नक़ाब को हटते
कभी चिराग जलाओ कभी बुझाओ भी।

2

ज़मीं अपने बदन पर कुछ भी तो ओढ़ा नहीं करती
बनाकर चाँद तारे सीने पर सौदा नहीं करती
उसे गिर गिर के उठने का हुनर भी खूब आता है
दीये की लौ हवा के ज़ोर से टूटा नहीं करती
मदारी देखने का शौक इसको है बहुत लेकिन...
ये जागी कौम है सिक्के कभी फेंका नहीं करती
मियां तुम भी यहाँ अहदे वफ़ा की बात करते हो
यबायफ़ एक की ख़ातिर कभी मुज़रा नहीं करती
सफ़र में सैकड़ों घाटों से मिलना उसकी फ़ितरत है
किसी तटबंध से कोई नदी वादा नहीं करती
कभी लोबान की खुशबू को मुट्ठी में लिया तुमने
इबादत भी बुतों का रास्ता देखा नहीं करती
मनाने के लिए उसको कई दोनें पहुँचते हैं
सड़क की कोई पगली रात को फ़ाका नहीं करती
तेरी तहज़ीब के पत्थर उधर जाने से बचते हैं
वो पगली खिलखिलाती है कोई शिवका नहीं करती
कोई अपना दिखे तो और भी अनजान बनती है
मुहब्बत में ज़माने के लिए किस्सा नहीं करती
नियति को मानकर गंगा जहाँ के पाप धोती है
वो खुद के पाक होने का कोई दावा नहीं करती
ठगे जाओगे तुम बाजार से वाक़िफ़ नहीं अभिनव
तुम्हारे सामने वो इसलिए चेहरा नहीं करती।

हैरत की बात

कविरत्न हारूण रशीद गाफिल
अररिया, बिहार
मो०–9430264552

क्या बताऊँ मैं, कि क्या है जिन्दगी
एक मुसलसल जतरूबा है जिन्दगी
हादसा ही हादसा है जिन्दगी
जाने ये कैसी सजा है जिन्दगी
हादसा की हादसा है जिन्दगी
जाने ये कैसी सजा है जिन्दगी
इसलिए रग–रग में है दीवानापन
एक मजनूँ की दुआ है जिन्दगी
किस तरह माँगू मैं उनसे अपना
उनका तोहफे में दिया जिन्दगी
तूने समझा ही नहीं गाफिल मुझे
एक देहाती दिलरूबा है जिन्दगी
नजरें टिकी हुई हैं नजारों के आस–पास
वह कौन छुप गया है सितारों के आस–पास
जिसनें गुजारी उम्र किनारों के आस–पास
वह आज घिर गया है हजारों के आस–पास
मंजिल की जुस्तजु है तो तन्हा निकल पड़े
क्यूँ फिर रहे हैं आप सहारों के आस–पास
मैं जिसके दिल में जिन्दा हूँ हैरत की बात है
वे ढूंढते हैं मुझको मजारों के आस–पास
क्यों हो रहे हैं आप परेशां इधर–उधर
'गाफिल' मिलेगा टूटे सितारों के आस–पास

कहानी

संयोग या नियति का खेल

डॉ0 आनंद प्रकाश
पी.एच.डी, पी0 ई0 एफ ए
एस सी ई एफ आई ई
शिकागो, अमेरिका
फोन–847–634–3906

क्रमशः में –

1947 का मई मास था, गढ़ी का कार्यकाल समाप्त कर के रवि हलवान लौट आया था। वहाँ का वातावरण अपने चार वर्ष पूर्व के बाल्यकाल से भिन्न सा लगा। वह किशोर अवस्था में आ चुका था। द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति को लगभग दो वर्ष बीत चुके थे। तीन जून 1947 को लार्ड माऊंट बैटन ने घोषाणा की कि ब्रिटिश सरकार ने भारतको स्वतंत्र करने का निश्चय कर लिया है। तत्काल ही जनता में बातें उड़ने लगी थी कि भारत को दो भागों में विभाजित किया जायेगा, एक भारत और दूसरा पाकिस्तान। अटकलें और आशंकाएं फैल रही थीं कि हलवान और गढ़ी दोनो ही पाकिस्तान का भाग होंगे। किन्तु अभी भी गाँव की स्थिति सामान्य थी और पूर्ण आशा थी कि जो परिवार अपने पैतृक गाँव में रहना चाहेंगे, उनको स्थान ,गाँव या देश परिवर्तन नहीं करना पड़ेगा। अतः देश विभाजन से अप्रभावित उसके पिता श्री और ज्येष्ठ भ्राता ने उसे उच्च शिक्षा हेतु लाहौर भेज दिया था। कुछ ही सप्ताह पश्चात् 14 अगस्त 1947 को पाकिस्तान के रूप में एक नये राष्ट्र का निर्माण हुआ और हलवान तथा गढ़ी दोनों गाँव पाकिस्तान का भाग बन गये। शीघ्र ही हिन्दू व सिक्ख छात्रों के साथ आक्रामिक व्यवहार प्रारम्भ हो गया। हिन्दू बहुल परिसरों में अग्निकांड और हिंसाका वातावरण व्याप्त हो गया। इधर –उधर के आश्वस्त एवं अनाश्वस्त सूत्रों से पता चला कि उसके परिवार के सभी सदस्य अन्य ग्रामवासी हिन्दू तथा सिक्खों के साथ अमृतसर पलायन कर रहे हैं। इधर विद्यालय के वातावरण में जीवन रक्षा दूभर हो गयी थी। अधिकांश हिन्दू सिक्ख छात्र या तो हताहत हो गये थे या पलायन कर चुके थे।

एक रात, अवसर देखकर, रवि एक अन्य सहपाठी के साथ, रात्रि के अन्धकार में अपने छात्रावास से निकलकर गुप्तचर की भांति लाहौर रेलवे स्टेशन पहुंचा और दोनों ने अमृतसर की गाड़ी पकड़ी। संयोग से अमृतसर पहुँच कर शरणार्थियों की भारी भीड़ में कुछ कठिनाई और आशा–निराशा के दुःसह क्षणों के पश्चात् दोनों अपने अपने परिजनों से मिलने में सफल हो गये। किन्तु, रवि के परिवार की कोई सूचना नहीं मिल सकी। कुछ सप्ताह की विवशता, विषमता, दुर्गम कठिनाईयों और असुविधाओं के पश्चात् रवि के परिवार को हरिद्वार के निकट एक अस्थायी निवास क्षेत्र में शरण मिली। अबतक यह निश्चित हो चुका था कि उसके ज्येष्ठ भ्राता तो पाकिस्तान के हत्याकांड में हताहत हो गये थे। उसके पिताश्री ने उसके ज्येष्ठ भ्राता को , हलवान से लाहौर प्रेषित किया था। ताकि वह रवि को छात्रावास से अमृतसर प्रस्थान करने में मार्ग दर्शन और सहायता प्रदान कर सके। किम्बदतियों द्वारा सूचना मिली थी कि हलवान से लाहौर की ओर जाने वाली बसों के अधिकांश हिंदू सिक्ख पुरूषों की नृशंस हत्या कर दी गयी थी।

हरिद्वार के निकटस्थ निवास क्षेत्र में उदास रवि तथा उसके व्यथित परिवार का पुनर्जीवन प्रारंभ हुआ। समय चक्र चलता गया,कष्टप्रद तथा बीभत्स स्मृतियों के साथ दो वर्ष व्यतीत हो गए और रवि को निकटस्थ , सुप्रसिद्ध विश्वविद्यालय में इंनजियरिंग के लिए प्रतियोगी प्रवेश–परीक्षा में सफलता मिल गयी। इस विद्यालय का निवास तथा शिक्षण शैली अभी तक ब्रिटिश प्रणाली और अनुशासन पर ही चल रहे थे, जो अपेक्षाकृत महंगे तथा उच्चस्तरीय थे। अतः रवि ने छात्र–ऋण एवं छात्र वृत्ति पर निर्भर रह कर अपनी शिक्षा पूर्ण की ।

तत्पश्चात् उसकी सहायक अभियंता के पद पर नियुक्ति हुई। यह अभियांत्रिक कार्य उसे बहुत रूचिकर लगा। राजकीय कार्य के लिए उसे एक चपरासी , एक सन्देश वाहक, एक दफेदार, और तीन वर्कदाजों की सेवायें उपलब्ध थीं। इसके अतिरिक्त दो लिपिकीय कर्मचारी, एक भुगतान खाते के लिए तथा दूसरा सिंचाई खाते के लिए तथा क्षेत्रीय सहायता के लिए कई अधीनस्थ कर्मचारी भी थे। यहाँ तक कि सरिता –सर्वेक्षण तथा ट्रैकिंग के लिए एक हाथी और महावत भी था। वाह्य रूप से वह एक मध्य स्तरीय,सम्मानित राजकीय अधिकारी था। किन्तु, वास्तविक रूप में उसकी आर्थिक स्थिति एक निम्न स्तरीय कर्मचारी जैसी थी। छात्र ऋण के भुगतान तथा निजी पारिवारिक व्ययभार के अतिरिक्त उसके सेवा–निवृत्त

पिताश्री को उसकी दो बहिनें की शिक्षा और विवाह संबंधी वित्तीय सहायता भी अनिवार्य थी। उसके स्तर के अधिकारी के वेतन वितरण तथा यात्रा व्यय –प्रतिपूर्ति का विधान बड़ा ही जटिल था और बहुत ही मंद गति से चलता था। राजकोष विभाग से उसका वेतन और यात्रा–व्यय मिलने में प्रायः तीन से छः मास का विलम्ब हो जाता था इस आर्थिक कठिनाई और नौकरशाही से थककर ज्योंही अवसर मिला, त्योंही उसने राजकीय इंजिनियरिंग विश्वविद्यालय में प्रतिनियुक्ति पर स्थानांन्तरण स्वीकार कर लिया। यहाँ उसे अध्यापन के अतिरिक्त भवन निर्माण एवं रख रखाव का प्रबंधन कार्य भी करना था। किन्तु, यात्रा व्यय संबंधी कोई समस्या नहीं थी और वेतन मास के प्रथम दिवस को मिल जाता था। कुछ डबल ड्यूटी एवं प्रतिनियुक्ति संबंधी भत्ता भी उपलब्ध था।

विश्वविद्यालय के अध्यापन काल में उसे कोलोराडो स्टेट युनिवर्सिटी , फोर्ट कॉलिंस से शोध सहायक– छात्रवृत्ति उपलब्ध हुई जिसके अंतर्गत उसे उच्चस्नातकीय अध्ययन तथा शोध कार्य करना था। अगस्त मास की तप्त सायंकाल उसका वायुयान शिकागो उतरा। वहाँ से अमेरिकी अंतर्देशीय उड़ान लेकर वह लगभग मध्यनिशा में डेनवर पहुंचा। उसके अनुसन्धान प्राध्यापक ने एक अन्य भारतीय शोध सहायक विद्यार्थी द्वारा उसे डेनवर से फोर्ट कॉलिंस लाने का प्रबंध किया था। ये दोनों एक दूसरे से अपरिचित थे। अतः रवि को परामर्श दी गयी थी कि वह जब बैगेज क्लेम और सीमा शुल्क क्षेत्र से बाहर आये , तो इस व्यक्ति को कलेक्ट कॉल करे। रवि को पता नहीं था कि इसके लिए एक डायम के सिक्के की आवश्यकता होती है। उसके पास दो सौ डॉलर का केशियर चेक तो था, पर खुले सिक्के नहीं थे। झिझकते–झिझकते उसने एक सह यात्री अमेरिकन महिला को अपनी दुविधा बतायी। महिला ने तुरंत उसे एक डायम दिया और कलेक्ट कॉल करने में उसकी सहायता की। उसकी उदारता से रवि बहुत प्रभावित हुआ। फोन की घंटी बजी; तत्काल ही फोन कंपनी के प्रतिनिधि का स्वर और दूसरी ओर से कलक्ट कॉल की स्वीकृति का उत्तर सुनायी पड़ा; और वह डायम तुरंत ही पे फोन से निकल पड़ा। यह त्वरित प्रतिक्रिया देख कर रवि विस्मित रह गया।

अब उसने पुनः विद्यार्थी जीवन में प्रवेश किया। विद्यालय के परिसर में सहशिक्षा थी। छात्र, छात्राएं साथ–साथ शिक्षा ग्रहण करते थे, मध्यरात्रि तक पुस्तकालय में अध्ययन करते थे, और स्वच्छन्द उठते बैठते थे। किन्तु वातावरण भारत के विद्यालय परिसरों में एकदम भिन्न था। सीटियाँ बजाने और अश्लील टिप्पणियां या कटाक्ष करने की कोई कुप्रथा नहीं थी। सामान्यतः यौन–उत्पीड़न की कोई आशंका नहीं थी। कोई नौकर चाकर नहीं था; प्रायः, हर व्यक्ति आत्म–निर्भर था ; अपने रहन सहन व भोजन इत्यादि का स्वयं प्रबंध करता था और स्वयं ही अपने वस्त्रों का निवास स्थान की सफाई करता था। इस सब के लिए हर निवास स्थान में उचित सुविधाएँ उपलब्ध थी। फोर्ट कॉलिंस एक अपेक्षाकृत छोटा सा नगर था। परिसर के आस पास निवास गृहों में ताले लगाने की विशेष आवश्यकता नहीं थी। कितनी भी लम्बी लाईन हो या कितनी भी जल्दी हो कोई भी व्यक्ति पंक्ति भंग नहीं करता था; पूरे नियमित और संतुलित रूप से अपनी बारी की प्रतीक्षा करता था। ग्राहक सेवा विंडो पर कार्यरत कर्मचारी विनम्र तथा सहायता देने में तत्पर होते थे। सभी घरेलू विद्युत यंत्र 110 वोल्ट पर चलते थे, न कि 220 वोल्ट पर । परिणाम स्वरूप, विद्युत शोर्ट सर्किटिंग से घातक दुर्घटनाओं की संभावना अपेक्षाकृत कम थी। जनसाधारण के आय–व्यय का संतुलन और वित्तीय क्षमता कुछ ऐसी थी कि प्रायः सभी में नित्य– प्रति के जीवन की सामान्य सुविधाएं जुटाने की सामर्थ्य होती थी उदाहरणार्थ, रेडियों, टेलिविजन, रिफ्रिजरेटेर, टेलीफोन, कुकिंग गैस, गर्म निवास–स्थान पुरानी या नई कार , पीने तथा अन्य आवश्यकताओं के लिए शीतल और गर्म पानी इत्यादि। विद्यालय में पुस्तकालय, मेनफ्रेम कम्प्यूटर, प्रयोगशाएँ तथा शोध छात्रों के लिए अध्ययन कक्ष इत्यादि की प्रर्याप्त सुविधाएँ थी। यह सब देखकर उसे वेस्ट्रेड साल की अमेरिका यात्रा के समय की एक उक्ति का स्मरण होता था कि 'ऐसा प्रतीत होता है कि अमेरिका ने पृथ्वी पर एक आर्थिक स्वर्ग का सृजन कर लिया है।'

विद्यालय परिसर में अपने निवास काल में उसने देखा कि इन्जिनीयरिंग विभाग में श्वेत वर्ण अमेरिकी स्नातकोत्तर शोध छात्रोंकी संख्या अपेक्षाकृत नगण्य सी थी। इस स्थिति के विश्लेषण से पता चला कि अमेरिका में अधिकांश अभियांत्रिक नौकरियां प्राइवेट क्षेत्र में थी और वहाँ अमेरिकी छात्रों के लिए स्नातक की शिक्षा के पश्चात् नौकरी पाना सुगम था। यदि वे स्नातकोत्तरी शिक्षा के लिए जाते, तो उसे पूर्ण करने में पांच या छः अधिक वर्ष लगते थे। इस प्रकार उनका व्यावसायिक अनुभव पांच या छः वर्ष कम हो जाता था। प्रायः अनुभव हीन स्नातकोत्तरी आवेदक का वेतन पांच या छः वर्ष के अनुभवी स्नातकीय व्यक्ति से अधिक नहीं होता था। इसके अतिरिक्त उसका पांच या छः वर्ष का व्यावसायिक वेतन स्नातकोत्तरी शिक्षा के कार्यकाल में उपलब्ध छात्रवृति से कहीं अधिक होता

था और उसके पदोन्नति के अवसर भी उत्तमतर हो जाते थे। यह सोच कर रवि को अमेरिका में उच्च शिक्षा का अवमूल्यन सा प्रतीत हेाता हुआ और कुछ हतोत्साहिता एवं निराशा सी हुई। पर इस कटु एव अप्रिय सत्य का भी आभास हुआ कि उच्च शिक्षा व्यक्ति को आर्थिक दृष्टि से सुरक्षित सा भविष्य तो दे सकती है किन्तु उसकी शीर्ष तक या शीर्ष के निकट तक की त्वरित पदोन्नति सुनिश्चित नहीं कर सकती।

स्नातकोत्तरी शिक्षा के पश्चात् रवि को सानफ्रांसिस्का में एक अंतराष्ट्रीय इन्जीनियरिंग परमर्शदाता संस्था में व्यवसाय मिला। यह एक प्राइवेट कंपनी थी, जिसका व्यापार अमेरिका के अधिकांश राज्यों के अतिरिक्त विश्व के बारह अन्य देशों में भी था। रवि का कार्य क्षेत्र आधा राष्ट्रीय तथा आधा अंतराष्ट्रीय था। उसका अभियान्त्रिक कार्य मुख्यतः वैसा ही था जैसा भारत में था। हाँ कम्प्यूटर आधारित विश्लेषण कहीं अधिक व्याख्यापूर्ण ,विस्तृत और जटिल होता था।

तत्काल ही वह अपनी ध्यान मुद्रा से भटका और उसकी दृष्टि टोरंटो के होटल के कमरे में अपनी शय्या के पास घड़ी पर जा टिकी। रात्रि के अपरार्ध के दो बज चुके थे। हलवान की हेमा से विदाई के पश्चात् लगभग पंद्रह वर्ष बीत चुके थे। कल का आकस्मिक मिलन इतना अप्रत्याशित, रोमांचक एवं आशाजनक लगा था कि वह अतीत की अनेकों सुघटनाओं की मधुर स्मृतियों में घूमता रहा और लगभग तीन बज चुके थे, तब कहीं उसकी आँख लगी। अगले दिन ,मध्याह्न से पूर्व वह हेमा के अपार्टमेंट में पहुँचा। अपार्टमेंट छोटा था, किन्तु अत्यंत कलात्मक तथा सुन्दर रूप से सजाया हुआ था। केवल एक शयन कक्ष था, एक बाथरूम, एक किचन, और एक अच्छा बड़ा फेमिली रूम।

''हेमा , तुम अकेली रहती हो?तुम्हारा परिवार कहाँ है?'' हाँ रवि, अकेली ही रहती हूँ। भारत के विभाजन के समय मेरे पिता जी पाकिस्तान के हिंसात्मक वातावरण से किसी प्रकार बचकर कीनिया आ गये थे। मैं और माताश्री तो वहाँ मेरी छुट्टियाँ बिताने के लिए पहले से ही गये हुए थे। स्मरण हो,तो मैं ने तुम्हें इस विषय में बताया था, जब तुम 1947 के मई मास में मुझ से विदाई लेने हमारे घर आये थे। उसके पश्चात् हम कीनिया में ही रहने लगे थे। मेरे पिताश्री और चाचा जी ने मिलकर वहाँ का व्यवसाय संभाला और विस्तृत किया। वहाँ से कुछ मुस्लिम मित्र परिवार पाकिस्तान आते जाते रहते थे। उनके द्वारा हमने पता किया कि उस समय हलवान और गढ़ी दोनों गाँव में कोई हिन्दू परिवार विद्यमान नहीं था। इस प्रकार दुर्भाग्यवश ,तुम्हारे और तुम्हारे मातुल के परिवार से, और विशेषतः तुम से संपर्क टूट गया बालकपन के तुम्हारे साथ बिताये घनिष्ठ स्नेहमय और मनोरंजक समय की स्मृति बहुत व्याकुल करती थी। बहुत दुःख हेाता था, रवि, भाग्य की बिडम्बना पर और निराशा भी बहुत होती थी। कीनिया से हाई स्कूल करने के पश्चात् मुझे अग्रिम शिक्षा प्राप्ति के लिए टोरंटो भेज दिया गया । बहुत से भारतीय मित्रों ने यहाँ स्थापित होने में मेरी सहायता की। यहाँ मैंने स्नातक की और स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त की । अब यहाँ हाई स्कूल में एक शिक्षक का कार्य करती हूँ। इस बीच मेरे माता,पिता का देहांत हो गया। तत्पश्चात् मैंने चाचा जी की स्वीकृति से यहाँ ही रहने का निश्चित कर लिया। जीवन कुछ एकाकी है। पर यहाँ कई एक भारतीय परिवारों से अच्छा संबंध है।अतः, जीवन सुचारू रूप से व्यतीत हो रहा है; सामाजिक जीवन रूचिकर है। अपनी सुनाओ , रवि; तुम्हारा पाणिग्रहण हुआ ?

हेमा के माता–पिता के निधन की बात सुनकर रवि को कष्ट हुआ। तदपि, यह जानकर कि उसकी चिरपरिचित प्रिय शिष्य एवं सुहृद हेमा, सकुशल और स्वस्थ है, अविवाहित है और संयोग से या नियति और देवगण की असीम कृपा से आज उसके सम्मुख विराजमान है। ''कितने खेद की बात है, हेमा, मैं तो तुम्हारे माताश्री और पिताश्री से मिल ही नहीं पाया और न कभी मिल पाऊँगा। अब , और रही मेरे पाणिग्रहण की , नहीं, कहाँ हेमा? तुम तो मुझ से और मेरी पारिवारिक स्थिति से भलीभांति परिचित हो। मैं किसी अभिनेता की भांति असाधारणतया आकर्षक, साहसी, और उच्चस्तरीय व्यक्ति तो हूँ नहीं; किसी भी प्रकार से असामान्य व्यक्तित्व भी नहीं है मेरा; अतः, मुझे कोई उचित समन्वयी युवती मिल ही नहीं पायी।'' कैसी बात करते हो रवि, तुमको पाकर तो कोई भी सुकन्या अपने को भाग्यशाली समझेगी। तुम सुशिक्षित हो, प्रतिभावान हो, व्यवसाय–रत हो, स्वस्थ हो, सुशील हो तथा शालीन दीखते हो और मुझ से तो लगभग पांच छः सेंटीमीठर लम्बे हो। यह मैं विश्वास के साथ कह सकती हूँ क्योंकि मैं तुमसे भलीभांति परिचित हूँ''। सुनते ही हेमा और अपनी विगत पंद्रह वर्ष पुरानी सुमधुर गोष्ठियां उसके स्मृति–पटल पर उभर आयी और बिना कुछ विचार किये , संकोच रहित हृदय से बोल उठा, ''तुम करोगी मुझ से विवाह हेमा?'' सुनकर हेमा के उल्लासमय मुखमंडल पर मुस्कराहट आयी, पुरातन प्रीति की मधुर स्मृति हुई, और रोमांचित एवं पुलकित सी मनःस्थिति में अकस्मात कहे हुए उसके स्वीकृति सूचक

शब्दों से गुंजरित हो उठा वह कक्ष। हाँ अवश्य, मैं करूँगी तुम से विवाह रवि, इसी क्षण।

रवि ने उसको अपने और कैथी के अल्प कालिक मंदिर प्रणय का विस्तृत और स्पष्ट विवरण दिया। हेमा ने कैथी तथा रवि दोनो के संयम, सरलता एवं पवित्रता की सराहना की ,''पाश्चात्य वातावरण में सुवर्धित कैथी जैसी शालीन युवती से किसी समय साक्षात्कार करने की मुझे सदा ही उत्कंठा रहेगी, रवि।''

दोनों परिवारों के आशीर्वाद से दो मास के अन्दर भारत में उनका शुभ विवाह संम्पन्न हुआ। कीनिया के पारिवारिक व्यवसाय की आय से समर्थित हेमा की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी। उसने रवि की बहिनों के भारतीय परंपरा के अनुसार विवाह करने में , मन से आर्थिक सहायता दी। फलस्वरूप अब उनका गृहस्थ जीवन सुचारू रूप से चलने लगा। रवि अपने माता पिता की मन–वांछित ढंग से सहायता भी करने लगा। इसी बीच उन्हें एक पुत्री और एक पुत्र का दैविक उपहार भी प्राप्त हो गया। क्रमशः–

अक्सर कुरेदते हैं

कविता

तुम दुःख को जताते हो,
कभी आँखों से;
तो कभी कंधे पर सिर रखकर
कभी कुछ दर्द भरा लिखकर
अक्सर तुम बताते हो
कि तुम दुःखी हो

अक्सर तुम्हारे आँसुओ की वजह पूछते
देखा है मैंने लोगों को
कुछ हिचकिचाते हो
पर अपना दुःख जताते हो

शायद तुम्हें सुकून मिलता है
उनकी सहानभूतियों से
अपने दुःख को जब तुम
दुनिया के सामने लाते हो
कि तुम दुःखी हो

मैं दुःख को नहीं जताता
मेरी आँखे भी कुछ नहीं कहती है
कारण है, तुम्हारी आँखों जैसी
इनमें कशिश नहीं है

इनकी ये बेरूखी पैदायशी नहीं है
मुझे आता नहीं है न
दुःख जताना

कोशिश करते है लोग
मुझे ले जाने को उन रास्तों से
मैं दबे पाँव मुस्कुरा के
आहिस्ते किनारे से निकलता हूँ

अक्सर कुरेदते हैं
लोग मेरे घावों को
जो अभी भी हरे हैं
मैंने कभी मरहम भी नहीं लगाया है
उन पर की वो ठीक हो जाये

हाँ! हँसता –खिलखिलाता हूँ
वजह है, अपनी सहानुभूति
बेवजह देंगे मुझको सब
जो मैं कभी चाहता नहीं
कि मुझे कमजोर करे
मेरे दर्द के साथ जीने में

बस यही फर्क है
मुझ में और तुममें
मैं जताता नहीं
और तुम खूब जताते हो
कि तुम दुखी हो।

वरूण प्रताप सिंह 'संकेत'
उत्तर प्रदेश

समीक्षा

कविता-संग्रह

सिर्फ घास नहीं

राहुल राजेश

अशोक सिंह
दुमका, झारखण्ड
मो०–9431339804

जहाँ प्रेम कमजोरी नहीं ताकत है और पसीने का नमक जीवन का कर्जदार है, बाजार का नहीं

एक समय था जब पत्र–पत्रिकाएँ कम आती थी और हमारे पास पुस्तकें भी कम थी तो पढ़ना ज्यादा होता था। अब जबकि पत्र–पत्रिकाएँ भी ज्यादा आती है और पुस्तकें भी बहुत हो गयी हैं, तो पढ़ना –लिखना कम हो गया है। ऐसे में अक्सर मुझे अपने गुरू की एक पंक्ति याद आती है, जो आज भी मेरे दिमाग की डायरी में अंकित है। पढ़ने–लिखने के सवाल पर वे कहा करते थे कि ''एक पंक्ति रचने (लिखने नहीं) से पहले एक हजार पंक्तियाँ पढ़ा करों। निःसन्देह यह वाक्य किसी भी रचनाकार के लिए महत्वपूर्ण हो सकता है। लेकिन सच कहूँ तो यह वाक्य आज मेरे भीतर भी तख्ती में लिखे एक आदर्श वाक्य की तरह मात्र टंगा रह गया है। बावजूद एक महत्वपूर्ण और रेखांकित करने वाली यह बात भी है कि कुछ पत्र–पत्रिकाएँ उसमें छपी रचनाएँ और पुस्तकें ऐसी भी होती है जो हमें खुद पढ़वा लेती है। कुछ तो यहाँ तक कि दोबारा–तीबारा तक भी पढ़वा लेती है। उसी में अभी हाल के दिनों पढ़ी गयी पुस्तकों में से राहुल राजेश का कविता–संग्रह 'सिर्फ घास नहीं' भी एक है।

कहते हैं अनुभूति आसान है, अभिव्यक्ति कठिन! और यह सच भी है। लेकिन उससे भी बड़ा सच यह है कि अपनी जिन्दगी के अनुभव व अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने वाले व्यक्ति का व्यक्तित्व जितना सहज सरल व व्यवहारिक होगा, उसके अंदर से निकलने वाले विचार और उसको अभिव्यक्त करने के तौर–तरीके भी उतने ही सहज सरल व व्यावहारिक होंगें। राहुल राजेश का व्यक्तित्व भी कुछ ऐसा ही है। जिसका प्रभाव उनके कृत्य पर देखा जा सकता है।

साहित्य अकादमी की नवोदय–योजना के तहत प्रकाशित उनके पहले कविता–संग्रह 'सिर्फ घास नहीं' से गुजरते हुए कई चीजें एक साथ हमारा ध्यान खींचती है। एक तो राहुल का अपनी कविता में सहज होना और दूसरा बिना किसी लाग–लपेट के सीधे–सीधे अपनी बातों को कहना। वह भी बोल–चाल की भाषा में एक विशेष प्रकार के आंतरिक लय के साथ , सरल से सरल शब्दों तथा छोटे –छोटे वाक्यों में। धरती आकाश पाताल और देश–दुनिया पर बड़ी बड़ी बातें कहकर शब्दों की बाजीगरी करने वाले बड़बोले कवियों से अलग विल्कुल अपने आसपास की मामुली सी मामूली चीजों से जुड़कर उसे कविता की परिधि में शामिल करना जिसमें अपने घर परिवार, गाँव–गिराँव और आँचल से गहरा जुड़ाव बनाये रखना जैसी चीजें महत्वपूर्ण हैं। साथ ही प्रेम के सकारात्मक पक्षों का समर्थन कर उसे कमजोरी नहीं ताकत के रूप में स्वीकार करते हुए उससे ऊर्जा लेना जैसी बातें भी राहुल को अपनी पीढ़ी के उन तमाम हम उम्र युवा कवियों की भीड़ से अलग करती है, जो कविता रचने से ज्यादा लिखने और ज्यादा से ज्यादा छपकर कवियों की पंक्ति में खड़े हो अपनी उपस्थिति दर्ज कराने में विश्वास रखते हैं।

अब बात जहाँ तक 'सिर्फ घास नहीं' कविता संग्रह को देखने–पढ़ने व समझने की है तो मेरी समझ से राहुल राजेश भी आम जीवन में अपने आसपास वही सब कुछ देखते सुनते हैं जो बहुत सारे लोग देखते सुनते हैं लेकिन जब कुछ कहने की बात आती है तो वह कुछ ऐसा कह जाते हैं जो बहुत कम ही लोग कह पाते हैं। वह भी कुछ इस अंदाज में जहाँ न तो कोई बड़बोलापन है और न ही एक साथ बहुत कुछ कह जाने की हड़बड़ाहट बल्कि सादगीपूर्ण तरीके से शांत लहजे में। ''बेर'' शीर्षक कविता में बेर को फलों के बीच 'आदिवासी' कह उन्होंने जिस तरह चौंकाया है, वह इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।सेब संतरे /आम–अंगूर/के बीच बैठूँ/इतनी बिशात नहीं/मैं जंगल का बेर हूँ/ मेरी कोई जात नहीं/ कहने को तो मैं/ उनका साथी हूँ/लेकिन फलों में आदिवासी हूँ। गौर करें तो ये पंक्त्याँ अद्भूत व अविस्मरणीय तो हैं ही प्रयास करके आदिवासी मुद्दों पर सैकड़ों कविताएँ लिखकर खुद को आदिवासियों के हितैषी कवि कहने वाले कवियों पर भी भारी पड़ती हैं।

कविता के संबंध में कहा जाता है कि कविता की रचना, कवि समय की आंतरिक मनोदशाओं, प्रवृतियों, चेष्टाओं , क्रियाविधियों व कार्यकलापों से निर्मित संबंधों से उर्जस्वित संस्कृति और एक नयी मूल्य व्यवस्था के प्रस्फुटन से होती है। इस काम के लिए रचनाकार को पूरे जीवन पर नजर रखनी

पड़ती है। इतना ही नहीं उसे पूरा चौकन्नापन भी रखना पड़ता है। इस परिप्रेक्ष्य में देखें–परखें तो राहुल राजेश अपनी रचनाओं में न सिर्फ जीवन के प्रति बल्कि अपने आसपास के परिवेश के प्रति भी सजग दिखाई पड़ते हैं। चाहे वो घर परिवार का मामला हो या समाज का या फिर अपने आसपास घटित हो रही विभिन्न घटनाओं का। रिश्ते के टूटने–बिखने की बात हो या मन में प्रेम के प्रस्फुटन की या फिर बाजार के बढ़ते दबाब और उसके प्रभाव से बदलते वर्तमान परिदृश्य में बनती बिगड़ती स्थितियों परिस्थितियों की सब पर बड़ी संजिदगी और साफगोई से कविता में कहने का सामथर्य राहुल राजेश में है।

वैसे अन्य कवियों की तरह माँ, पिता और बहनें भी इनकी कविता के केन्द्र में है लेकिन कहने का अंदाज जुदा है। वह भी इतना सूक्ष्म कि अन्यत्र दुलर्भ है। संग्रह की पहली कविता 'परिवार' में जहाँ एक तरफ वे माँ के संबंध में कहते हैं– माँ,घर की नीव/चूल्हें की आँच/प्रार्थनाओं की नदी/ संबंधों की अर्दली/ हम सबकी नींद। वहीं दूसरी तरह पिता के संबंध में कहते हैं–इच्छाओं जरूरतों के अथाह समुद्र में/ एक मजबूत नाव/जिस पर सवार पूरा का पूरा घर/इसी कड़ी में आगे भी वह बहन, भाई, और दादा–दादी के बारे में भी ऐसा ही कुछ कहते हैं जिससे घर परिवार में रिश्तों के महत्व और उसके प्रति गहरी आस्था का पता चलता है। संग्रह में माँ ,बहने, माँ एक दो जैसी कुछ और उत्कृष्ट व महत्वपूर्ण कविताएँ भी हैं जिनको इस कड़ी में जोड़कर देखा परखा जा सकता है। बानगी के तौर पर उसकी कुछ पंक्तियाँ देखें –माँ है तो/बन जाती है/मेरे और पिता के बीच पुल/बुखार में गर्दन का ताबीज/पिता के गुस्से पर पानी/ माँ है तो देर से लौटकर नहीं आते पिता.....। माँ को याद करने के साथ –साथ वे पिता का वसीयतनामा भी नहीं भूलते जिसमें पिता ने कहा है– नये कपड़े जरूर/लेकिन पुराने कपड़ों से भी रखो मोह/ कि इसी में बसता/बीतें दिनों का स्वाद/मत लेना किसी की आह/कुछ मांगना ही हो तो/बस माँगना थोड़ा आशीर्वाद/ देना ही हो कुछ तो/देना अपना विश्वास/बूरा बनने का भी हक है तुम्हें /लेकिन भला बने रहने का हक भी/तुमसे कोई छीन नहीं सकता।

राहुल राजेश की कविता में कोलाहल नहीं, शांत मनोरम वातावरण की दीप्ती झिलमिलाती है। वह भी मामूली से मामूली चीजों में। संग्रह के नामकरण पर केन्द्रित सिर्फ धास नहीं कविता में वे कहते है लगभग सफेद सी इनकी जड़े/बित्ते भर से भी इनका कद/कहाँ से लाती इतना गाढ़ा हरापन/किनकी आँखों से चुराया यह बाँकपन/पशुओं के थन में उमगता यह क्षीर/कोई विज्ञान नहीं ..../इन घासों का मातृत्व। अन्न, नमक, गन्ना, बाँस, पानी, पत्तियाँ और पहाड़ पर साँझ आदि कविताओं में कुछ ऐसी ही झलक देखी जा सकती है। इतना ही नहीं उन कविताओं में सहज प्रवाह, संगीतात्मकता और आंतरिक लय को भी शिद्दत से महसूसा जा सकता है। वह भी बाजारवाद के इस दौर में लोकधर्मी चेतना के साथ। कहा भी गया कि यदि कविता लोकतत्वों लोक रूपों को अपने भीतर रचना चाहती है, तो उसका काम नागर भाषा से नहीं चलेगा उसे लोक भाषाओं के पास जाना होगा। लोक–छंदों और लोकधुनों में जीना होगा। राहुल राजेश अपने कविता–कर्म में बखूबी इसका अनुपालन करते हैं। 'नमक' शीर्षक कविता के प्रवाह और लय को देखें पत्तियों की हरियाली में हूँ/चेहरे की लाली में हूँ/मुल्ला–पंडित/सबके घर बार में हूँ। अरबों –खरबों के व्यापार में हूँ/खुले बाजार में हूँ/नमक हूँ तो क्या हुआ/टाटा बिरला के दरबार में हूँ। गौरतलब है कि भूमंडलीकरण के इस दौर में बाजार के खिलाफ बिना किसी शोरगुल और नारेबाजी के जिस तरह अपनी लोकधर्मी चेतना के साथ कवि अपनी देशज चीजों को उसकी महत्ता के साथ स्थापित कर उसकी वकालत करता है, वह प्रशंसनीय ही नहीं अन्य लोकधर्मी कवियों के लिए अनुकरणी भी है। 'बाँस' शीर्षक कविता देखें तो बाँस का मानवीय स्वरूप खड़ा कर उसके हवाले से कवि कहता है बाँस हूँ/लेकिन दर्जे में घास हूँ/सूप डाली बन/घर–आंगन में टहलता हूँ/खाट बन जहाँ चाहूँ पसरता हूँ/लोहे से कम नहीं हूँ/प्लास्टीक से मेरी होड़ नहीं/बेंत भी मेरा जोड़ नहीं/फाइबर के सामानों–सा/मैं भी बैठक–घरों में सजता हूँ/ उनमें चमकीला ठंडापन/ मुझ में ठेठ गँवईपन है/उसमें शहरी वैभव/मुझमें माटी का यौवन है/शादी का मंडप बनाओ/या तीस मंजिली इमारतें/हर जगह मैं काम आता हूँ/चिता तक न सही/बिजली शवदाह–गृहों तक/मैं अब भी जाता हूँ। इसी कड़ी में 'गन्ना' शीर्षक कविता को जोड़कर देखें तो समकालीन कविता में राहुल राजेश की पकड़ के साथ–साथ बाजार की समझ और भाषा की सहजता, सरलता और शब्दों के प्रयोग के प्रति सजगता व काव्यानुशासन के अलावा लोक जीवन से उनके गहरे जुड़ाव को भी बारीकी से देखा परखा जा सकता है। 'गन्ना'–पाकर मुट्ठि भर प्यार/पक कर तैयार/भरपूर रसदार/विदा होता हूँ खेंतों से/पिसता हूँ निचुड़ता हूँ/ उबलता हूँ जलता हूँ ढलता हूँ/तब जाकर पहुँचता हूँ चाय की प्यालों में/गरीब के निवालों में/बोतल बंद शीतल पेयों के /इस लकदक बाजार में जब कोई/मुझ तक खींचा आता है/न जाने किस आदिम प्यार में/मैं झट निचुड़ता हूँ भरदम/ उसके सत्कार में/सचिन शाहरूख सौरभ के बूते टिकी हैं ये बोतलें/मैं तो बाबू टिका हूँ/बस अपने बूते इस बाजार में! उसी कड़ी में 'पारपत्र' कविता को भी नजर अंदाज नहीं किया जा सकता जो बाजारबन्द पर लिखी एक महत्वपूर्ण कविता है

जिसमें कवि अपने गहरे अनुभव से कहता है– समाज के सिर्फ उस वर्ग को मिलेगा पारपत्र/जिनके पास हो एक बेहद तेज –तर्रार भाषा/और ऐसा घर कि जिसमें दमक सके/ एक बेहद सम्मोहक बाजार । यहाँ तक कि कवियों को भी सावधान करते हुए कवि कहता है–कवियों सावधान/आपको नहीं मिल सकता पारपत्र/क्योंकि आपकी संवेदनशीलता विश्व–बाजार में/कहीं दर्ज नहीं है।

राहुल राजेश के यहाँ हताशा, अवसाद और नश्वरता का गान नहीं है। उम्मीद और आस्था से उनकी कविता भरी है। यहाँ तक कि दुख को भी सकरात्मक तरीके से देखने और उससे ऊर्जा लेने की अदम्य जीजीविषा कवि के भीतर मौजूद है। दुख के बिना 'और' दुख के साथ कविताओं को इस संदर्भ में देखने समझने का प्रयास किया जा सकता है, जिसमें कवि कहता है कि यह तुम्हारी आस्था नहीं । दुख ही है जो/तुम्हें ले जाता है/मंदिर के द्वार तक/तुम ईश्वर को नहीं/अपने दुखों को पूजते हो/यह तुम्हारा दुख है/शहर में न खप पाने का/कि बरबस याद आ जाता है/तुम्हें अपना गाँव/यह दुख ही है/जो बनता है सेतु/माँ और ब्याही बेटी के बीच । आगे आशा और उम्मीद से भरे कवि का दुख के प्रति सकारात्मक नजरिया देखिये –तुम्हारे घर की मुडेर पर/यह दुख ही बैठा है कौआ वन/जो जता रहा है/आने वाला है कोई सुख। इसी क्रम में संग्रह की अंतिम कुछ कविताओं में 'दुख का साथ' कविता की चंद पंक्तियाँ भी गौरतलब हैं–दुखी होने का मतलब/सुखों से वंचित होना नहीं होता/मसलन तब भी सत्तू–प्याज और बासी भात/मजे से खा सकते है आप/दुख हो साथ/तो सुख की क्रुरताओं से/बचे रह सकते हैं आप! आमतौर देखा गया है कि अधिकतर कवि दुख से टूटने–बिखरने का राग अलापते है और सुख में आनंद का अनुभव कर संतोष का गान गाते है। दुख में सुख की अनुभूति और सुख की क्रुरताओं को देखने–दिखाने की सूक्ष्म दृष्टि और संवेदना विरले ही रखते है। राहुल राजेश भी उनमें से एक हैं। यही कुछ है जो राहुल राजेश को उन्हें अपने हमउम्र कवियों की भीड़ अलग पहचान देती है। मेरी समझ से कविता का सामाजिक सरोकार भी यही है और कवि कर्म का लक्ष्य भी। जिस में राहुल राजेश पूरी तरह खरा उतरते हैं।

प्रेम को लेकर भी राहुल राजेश का नजरिया कुछ ऐसा ही है जो औरों से भिन्न कुछ अलग हटकर है। भाषा में बची रह गयी कुछ अस्फुट ध्वनियों से प्यार की भाषा रच लेने वाले राहुल राजेश अपने प्रेम विषयक भिन्न–भिन्न कविताओं में प्रेम के नये–नये अर्थों की तलाश करते हैं वह भी दैहिक सौंदर्य परे हटकर। जिसमें प्रेम जीवन की कमजोरी नहीं ताकत और ऊर्जा बनकर सामने आती है। बानगी के तौर पर प्रेम में इच्छाएँ कविता की चंद पंक्तियाँ देखिए–हमारा प्रेम ऐसा न हो/कि जीने की इच्छा से भारी हो जाये/एक दूसरे में बिछड़ जाने का दुख/चाहता हूँ हमारा संबंध ठीक वैसा हो/जैसा होता है जलते हुए लेम्प पोस्ट और रास्ते के बीच। उसी कविता की अगली पंक्तियाँ भी देखिये –मै तुमसे इसलिए नहीं करता प्रेम कि/तुम्हारे प्यार में अंधा हो जाऊँ/बल्कि इसलिए करता हूँ कि/बची रहे मेरी आँखे अंधी होने से/इस बेमुरौव्वत वक्त में। इस तरह जीवन में प्रेम का सकारात्मक तरीके से देखने दिखाने और उसमें जीने की प्रेरणा से भरी उनकी कई कविताएँ ऐसे भी जो न सिर्फ पठनीय व मर्मस्पर्शी हैं बलिक अविरमरणीय भी हैं। जिसे पढ़ते हुए भीतर देर तलक उसकी अनुगूंज महसूस की जा सकती है। इन कविताओं की विशेषता यह है कि कविताएँ उनके जीवन की नीजी वेदना से निःसृत होती हुई एक वृहतर जीवानुभवों में बदल जाती है, जिसका क्षितिज दूर तक फैला दिखाई पड़ता है। 'उस तरह तो बिल्कुल नहीं' शीर्षक कविता में प्रेम की परिधि का विस्तार व फैलाव तो देखते ही बनता है। रात जगे तो थे पर उनमें तुम नहीं/मेरी बेरोजगारी थी, बूढ़े पिता थे/और अनब्याही बहनें थी/बरबस याद आयी तुम और/बरबस भूला तुम्हें/दाल रोटी की चिंताओं में/जब भी चाहा तुम्हें फोन करूं/बुथ पर जाकर लौट आया/तुम्हारी आवाज से कहीं ज्यादा जरूरी लगे/जेब के दो रूपये/कुछ इस तरह किया/उस तरह तो बिल्कुल नहीं/जिस तरह करना चाहिए/किसी लडकी से प्रेम। संग्रह में प्रेम के इंद्रधनुषी रंग से रंगी कुछ ऐसी ही कविताएँ हैं असुदंर का सौदर्य पहली बार, कोई तो हो , अंततः थोड़ा –सा स्वीकारता हूँ मैं, 'ठीक इसी वक्त', 'एक आधुनिक प्रणय निवेदन', 'तकिया' मुझे अब भी तलाश, 'आज इस तरह', 'प्रेम में जीवन', 'तुम्हें कोई हक नहीं', 'पाखी के लिए विदा गीत' और 'मैं एक ऐसी औरत से प्रेम करता हूँ' जैसी कविताएँ। आँकड़ों की भाषा में कहें तो संग्रह में लगभग एक तिहाई कविताएँ प्रेम कविताएँ हैं जो संग्रह में अनमोल मोती की तरह बिखरे पड़े हैं। सभी एक से बढ़कर एक! न सिर्फ दिल को छूने बल्कि उसकी अतल गहराईयों में उतरकर जीवन में प्रेम के प्रति नयी सोच पैदा करने तथा नयी दृष्टि और समझ विकसित कर नयी दिशा देने में भी समर्थ हैं। वह भी बिना लाग लपेट के सीधे सीधे आम बोलचाल की भाषा में। मानो यह कवि की नहीं हम सबके भीतर वर्षों से पल रहे प्रेम की सहज अभिव्यक्ति है। सड़क छाप मजनुओं की तरह प्रेम में एक दूसरे से बिछुड़ने पर रोने–धोने की बजाय एक गंभीर प्रेमी की तरह जीवन की सच्चाईयों को स्वीकारते हुए कवि कहता है– तुम क्या सोचती हो/तुम्हारे चले जाने से/एकदम से बदल जायेगा सबकुछ/नहीं–नहीं/बदस्तूर जारी रहेगा जीना/रोजमर्रे की बातें खत्म नहीं होगी/एकदम से खत्म नहीं हो जायेगा/हँसना–बतियाना संग साथ निभाना। धीरे धीरे सूखने लगे तो लगे आत्मा की जड़ें/जीने की आस खत्म नहीं होगी/एक

हारी सी जिद्द तो बची रहेगी/कि नहीं तुम नहीं गई। इन पंक्तियाँ 'मुझे अब भी' शीर्षक कविता में देखी जा सकती है– कवि होकर भी कोई रंज नहीं करना था। जिस वक्त को हमने भरपूर जिया था साथ–साथ/उन्हीं से इस वक्त जीने की भरपूर ताकत लेनी थी/मुझे अनायास ही रूठ गयी नींद को मनाना था/धूसर होते जा रहे सपनों और भीतर/खोती जा रही रूमानियत को बचाना था/जैसा पहले देखता था चीजों को/ठीक वैसे ही अब भी देखने की आदत डालनी थी/मुझे अब भी तुम्हारे होने के एहसास में/पूरा–पूरा जीना था तुम्हारे बगैर!

कहा जाता है कि प्रेम पर लिखना हिंसा और हत्या के विरूद्ध खड़ा होना है। वैसे भी वैश्विक परिदृश्य में हिंसा का अगर कुछ बरक्स बन सकता है तो वह केवल प्रेम ही है। बेशक प्रेम का एक लोक पक्ष भी है। यही प्रेम सत्य शांति और अहिंसा तक ले जाता है। उसमें भी अगर लयात्मकता से भरी प्रेम कविता हो अंदर संगीत की तरह बजने लगती है। एक अनाधुनिक प्रणय निवेदन कुछ ऐसी ही कविता है– सारा दिन जी–तोड़ खटें/साँझ पहर घर लौंटे तो/हाथों पर हाथ धरें/जीने का बल दें/थोड़ा सुस्ताएँ, थोड़ा आराम करें/कभी हारें–टूटें तो/मन में उल्लास भरें/जितना है कम नहीं/मन में यह आस करें/थोड़ा एक दूजे पर/थोड़ा खुद पर/थोड़ा इस जग पर विश्वास करें/गौर करें इस कविता की लयात्मकता में संगीत तो है ही इसका कैनवास इतना बड़ा है कि धर परिवार के दाम्पत्य जीवन से निकल कर आस पास फैले समाज ही नहीं पूरे देश–दुनिया तक जाता है।

विषय की विविधता के हिसाब से संग्रह की अन्य कविताओं की पड़ताल करें तो घर परिवार नाते रिश्ते प्रेम और प्रकृति से लेकर बाजार और अपने समय व समाज की तमाम विसंगतियों गुमनाम और उपेक्षित होती जा रही चीजों के साथ गाँव–गिराँव से गुम होते जा रहे कई चिरपरिचित पात्रों की पीड़ा और उसके सामाजिक सांस्कृतिक महत्व को भी कवि अपनी कविताओं में चित्रित करता है। जिसे 'चुडीहारिन' शीर्षक कविता में देखा जा सकता है। चुड़ियों में वह केवल कलाइयाँ नहीं/पूरा गाँव पिरोती/बच्चों के लिए उत्सव/और औरतों के लिए/यौवन की संगीत होती है वह/उसके जाने के बाद उसके पसीने का नाम देर तलक महकता गाँव की फिजा में/कि गाँव की मान–मरयाद में खलल नहीं थी चुड़िहारिन/एक अवसर था रिश्तों का, आवाजाही का/कि उसके आने से कभी कभी टूट पाती थी गाँव भर की सीलन....। प्रस्तुत संग्रह में जहाँ एक ओर चिट्ठियाँ एक निर्वासित प्रश्न, 'सब कुछ खत्म नहीं हुआ', 'तकिया', 'नमक', 'चीजें', 'आतंक', 'पानी' ,'तलाश', 'मीता के लिए हँसी', 'वे हाथ' जैसी कई छोटी–मोटी मर्मस्पर्शी कविताएँ है तो दूसरी तरफ 'चतुर्भुज स्थान', 'दस मिनट', 'मतलब–बेमतलब', 'बहुत दिनों बाद मेरा शहर', 'मेरे जाने के बाद', 'यह दोपहर का वक्त' और 'नींद जैसी यादगार' लम्बी कविताएँ भी संग्रह की उपलब्धि है। न सिर्फ भाषा, भाव, संवेदना के स्तर पर बल्कि अपने काव्य मुहाबरों व बिम्बों के साथ– साथ कथ्य और शिल्प की कसावट के स्तर पर भी।

कुल मिलाकर राहुल राजेश के कविता–संग्रह 'सिर्फ घास नहीं' से गुजरते हुए हम कह सकते हैं कि कविता के प्राण उक्तियों को सहजता से अभिव्यक्त करते हैं। राहुल कविता लिखते कहते सुक्तिकार बनने से बचते हैं। शब्दों के अनावश्यक प्रयोग से बचते ही बौद्धिक आंतक और चमत्कृत कर देने वाली भाषा शैली से भी परहेज करते हैं। इनकी कविताओं का लहजा शांत और संयत है। अपनी सधी–सधायी भाषा और छोटे–छोटे वाक्यों में बड़ी से बड़ी बातें कह जाने का सामर्थ्य कवि के पास तो है ही, 'जीवन की आँच' 'तपे– तपाये' अनुभव भी कम नही है। तभी तो संग्रह की कविताओं में कवि कम कविताएँ ज्यादा बोलती हैं। वैसे अन्य कवियों की तरह राहुल राजेश के अंदर बैठा कवि भी अपने आस–पास कई सामाजिक राजनीतिक विसंगतियों को झेलता है। यहाँ तक कि अपने रोजमर्रे की जिन्दगी में उससे लड़ता भिड़ता भी है लेकिन जब उस पर कुछ लिखने कहने की बात आती है तो औरों की तरह नारेबाजी और चुटकुलेबाजी नहीं करता बल्कि जो कुछ भी लिखना कहना होता है, पूरी संजिदगी और गंभीरता से लिखता कहता है। वह भी प्रार्थना की भाषा में कुछ इस तरह जिसमें निराशा व हताशा के बाबजूद पृथ्वी पर मानवता और प्रेम को बचाने की आशा और उम्मीद दिखती है। बची रहें/घरों में चीटियाँ/रोशनदानों में घोंसले/बची रहे?बच्चों के बस्ते में स्लेट/दादी के किस्से /बक्सों में बची रहे/बची रहे कविताएँ/पृथ्वी की चाक पर झुकी/कुम्हार सी । वह भी जैसे तैसे नहीं बल्कि इन शर्तो पर लौंटे हम अपनी जुड़ों की ओर/तलाशें बिसरायें संबंध। जिये अपना ही लोक अपनी ही माटी/अपनी ही भाषा/ठानें कि अब और न हो कोई युद्ध/लेकिन लड़ें अपने हक के लिए पुरजोर/कि अब और न टूटे बहुत टूट चुका घर/पहचाने अपनी ताकत/कि हमारी रगों में दौड़े लहू, पानी नहीं/हमारे पसीने का नमक/जीवन का कर्जदार हो/बाजार का नहीं।

प्रकाशक : साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
पृष्ठ : 152, मूल्य : 80/–

यात्रा वृतान्त

मधुमय अंचल
अरूणाचल

रविशंकर सिंह
रानीगंज वर्द्धमान (प0बंगाल)
मोबाईल 9434390419

क्या आपने कहीं पक्षी विहीन आकाश देखा है?क्या आप चील, कौआ, तोता, मैना, बगुला, और गोरैया के बिना अपने परिवेश की कल्पना कर सकते हैं?कैसा लगता होगा वह परिवेश, जहाँ दूर–दूर तक चिरैईयाँ, चिरैई का पूत नजर नहीं आता हो? घनी वंशवारियों में पुटुस और सरपत की झाड़ियों में छोटी चिड़ियाँ के कलरव सुनकर अथवा सुपारी और नारियल के वृक्षों पर हरे पत्तों से झूलते बया के धोंसलों को देखकर आपको यहाँ छोटी चिड़ियाँ के अतिस्तव का एहसास हो सकता है। आप यहाँ के बच्चों से पूछें–क्या तुमने कौआ देखा है?'

वह तपाक से बोलेगा – 'हाँ'

'कहाँ देखा है?'

'किताब में। '

'कैसा होता है कौआ ?'

'काला होता है।'

'तुमने कैसे जाना?

'किताब में लिखा है। बच्चा मासूमियत से बोलेगा।

कहते हैं यहां के लोगों ने सारे परिंदों को मार डाला है। जरूर मार डाला होगा उन्होंने सारे परिंदों को। बच्चों के हाथ में गुलेल और पुरूषों के गले में लटकती कटार को देखकर यकीन के साथ कहा जा सकता है कि वाकई यहाँ के निवासी शिकारी मनोवृत्ति के हैं। यहाँ घने जंगल है, लेकिन कहीं हनुमान या बंदर नजर नहीं आता । चाय की दूकान पर बैठे एक व्यक्ति ने मुझे बताया कि यहाँ के जंगलों में हाथियों के झुण्ड रहते हैं। यहाँ धनी–मानी लोगों ने व्यवसाय के लिये अपने यहाँ हाथी पाल रखा है। हाथियों से लकड़ी की ढुलाई का काम लिया जाता है वह व्यक्ति स्वयं पिलवान था। उसने मुझे हाथियों के बारे में कई दिलचस्प जानकारियाँ दी। उसने बताया कि साहब लोग कुत्ते को सबसे वफादार जानवर मानते हैं, लेकिन हाथी से वफादार जानवर तो होता ही नहीं है। उसी ने बताया कि यहाँ के जंगलों में बाघ , भालू , हिरण और जंगली खरहे भी हैं।

क्या आपने पहाड़ पर कदलीवन और घनी बंसवारियाँ देखी हैं ?

एक ऐसा जंगल जहाँ सेव, संतरा, नाशपाती, ओक, चीड़, मैपल, फर, साल, सागौन के हरितिमावेष्ठित सघन वन हों, लेकिन पीपल ,बरगद, नीम, बबूल, ताल और खजूर का कहीं नामोनिशान न हो, तो मेरी सलाह है कि आप एक बार भारत के पूर्वोत्तर सीमांत पर स्थित हिमालय की तराई में ऊँची–नीची पर्वत श्रेणियों की गोद में बसे अरूणाचल प्रदेश की यात्रा अवश्य करें। अरूणाचल प्रदेश के लिए फिलहाल गुवाहाटी तक रेल मार्ग से जाया जा सकता है। वहाँ से तकरीबन बारह घंटे की बस यात्रा करने के उपरांत आप अरूणाचल प्रदेश की सीमा बांदरदेवा में प्रवेश करेंगे। हाँ अरूणाचल प्रदेश की यात्रा पर जाने के लिए आप अपने साथ अपना पहचान पत्र ले जाना कतई न भूले। बांदरदेवा में तैनात सैनिकों के समक्ष आपको अपना पहचान पत्र प्रस्तुत करते हुए अपनी यात्रा का मकसद बताना पड़ेगा। वहाँ आपके बैग आदि की तलाशी भी ली जा सकती है।

कल–कल, छल–छल बहती नदियाँ पहाड़ों से झरते झरने, हरे–भरे जंगलों से घिरे और रंगीन फूलों से भरे पहाड़। पहाड़ों की चोटियों पर फैली हरियाली को देख्षकर ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति ने किसी अल्हड़ नवयौवना के उन्नत वक्ष पर हरी चूनर डाल दी हो। चोटियों पर अठखेलियाँ करते बादलों को देखकर लगता है जैसे वे धरती के आँचल में अपना सारा रस उड़ेल देने के लिए आतुर हों। सच तो यह है कि यहाँ अनामंत्रित मेहमान की मानिन्द अकस्मात ठंडी हवा के झोंकों क साथ काले बादलों के झुंड आते हैं और झमाझम पानी बरसाकर चले जाते हैं। यहाँ की वर्षा के क्या कहने! तड़–तड़, पड़–पड़ की बौछारों के साथ जब जल की मोटी–मोटी जलधारा बरसने लगती है तो आस–पास का सारा परिदृश्य आँखों से ओझल हो जाता है। पर्वतीय प्रदेश की ऐसी ही वर्षा को देखकर प्रकृति प्रेमी कवि पंत ने कहा होगा –

'लो अचानक
पंख खोलकर,
उड़ गया भूधर'

यहाँ के पहाड़ों पर पत्थर कम और मिट्टी की मात्रा ज्यादा है, इसलिए बरसात में यहाँ अक्सर भू–स्खलन होता रहता है। यहाँ बार बार सड़कें बनाई जाती हैं और टूट जाती हैं। मैंने देखा यहाँ के अधिकांश निवासियों के घर लकड़ी के

बने होते हैं। उनके घरों की फर्श जमीन से ढाई तीन फुट ऊँची है। यहाँ के लोग परंपरा से प्रकृति के साथ अनुकूलन के उपाय सीखते आए हैं। उनके घरों के नीचे से बालू, मिट्टि, पानी बहकर छोटी–छोटी नदियाँ से गुजरते हुए ब्रह्मपुत्र की धारा में मिल जाता है। अपने घरों के फर्श को जमीन से ऊँचा बनाकर एक तो ये लोग घर को सीलन से बचाते है, दूसरे कीड़े–मकोड़ें का भय भी जाता रहता है। नम माटी के कारण यहाँ जोंक इतने हैं कि आप तनिक भी असावधान हुए कि जोंक आपके बदन में चिपक जायेगा और जी भर खून चूसने के बाद ही भद से गिरेगा।

यहाँ वर्षावनों की बहुतायत है, जिनमें केन, बांस, बेंत की बहुलता है। वन ही यहाँ की मूल सम्पति है। भारतीय रेलवे के लिए अधिकांश लकड़ी की आपूर्ति यहीं से होती है। यहाँ के एक व्यक्ति ने मुझे अपने बागान में लगे बाँस जैसे मोटे बेंत की एक प्रजाति दिखाई। उसने बताया कि इसकी लंबाई लगभग एक किलो मीटर तक होती है। मैंने देखा कि अधिक लंबाई के कारण बेंत की यह दुर्लभ प्रजाति सीधे उर्ध्वाकार न बढकर क्षैतिज दिशा में बढ़ती जा रही है। उसने बताया कि यहाँ के जंगलों में इस प्रजाति के बेंत हैं जिसकी कीमत लाखों में होती है। ऐसे बेंत के खरीददार दिल्ली जैसे महानगरों से आते हैं। उसी ने मुझे बताया कि पूरे देश में यहाँ की एक युनिक व्यवस्था है। यहाँ के वन जनजातियों के द्वारा वनविभाग को लीज पर दिये जाते हैं।

यहाँ की आवोहवा में काफी नमी है, जिसके कारण पेड़ों पर तरह–तरह के ऑर्किड उग आये हैं। उन ऑर्किड के मनभावन फूलों को देखकर मेरा मन ललचा गया। मैं उन फूलों को साथ ले आने की तरकीब सोचने लगा। एक स्थानीय व्यक्ति ने मुझे बताया कि आप उन्हें अपने अंचल में ले जाकर लगाने की भूल कतई न करें शुष्क प्रदेश की आवोहवा में उन्हें बचाये रखना किसी प्रकार से संभव नहीं है। उसी व्यक्ति ने मुझे बताया कि यहाँ के वनों में औषधीय पौधों का भंडार भरा पड़ा है। यहाँ के निवासी ऐसे हर्बल मेडिसिन का उपयोग करना भली–भांति जानते हैं।

ऊँचे–नीचे पहाड़, जंगल, नदी और झरनों से भरे इस अंचल में खेती के लायक समतल भूमि का नितांत अभाव है। नदियों के तटों पर, पर्वतों की तराई में थोड़ी समतल भूमि है जिसमें लोग धान, मक्का अनानास, बैगन, भिंडी, खीरा, कद्दू, करैला आदि उगा लेते हैं। यहाँ के मूल निवासियों की खेती करने में रूचि नहीं है। वे लोग मूलतः खेती करते हैं या कोई व्यवसाय करते हैं। विरला कोई आने से खेती करता है वरना अधिंकांश लागों ने देखभाल के लिए अपने खेत दूसरों को दे रखे हैं। असम से आए किसान यहाँ मुख्यतः खेती का काम करते हैं। वे लोग मूलतः बांग्लादेशी है जिन्होंने यहाँ आकर पहले असम में अपना आशियाना बनाया और रोजी–रोटी की तलाश में भटकते हुए अरूणाचल प्रदेश में आकर खेती–बाड़ी करने लगे। उनके खेतों में वे फसल उपजाकर अपना भरण पोषण करते है। इसके एवज में उन्हें जमीन मालिक को न तो उपज का अंश देना पड़ता है और न कोई भुगतान करना पड़ता है। अरूणाचलवासी जमीन की सुरक्षा के लिए और जमीन पर अपना अधिकार बनाये रखने के लिए उन्हें अपनी जमीन पर खेती करने की अनुमति दे देते हैं। अरूणाचल प्रदेश की अपनी विशेषता है कि कोई गैरआदिवासी न तो वहाँ जमीन खरीद सकता है और न किसी की जमीन हड़प सकता है। सरकारी नियमानुसार गैर आदिवासियों को यहाँ केवल नौकरी करने का एवं किराये के मकानों में रहने का अधिकार है। गैरआदिवासियों को यहाँ किसी प्रकार का व्यवसाय करने का भी अधिकार प्राप्त नहीं है। गैरआदिवासी व्यवसायी यहाँ स्थानीय लोगों के नाम पर लाइसेंस बनवाकर व्यवसाय करते हैं।

सन् 1972 में अरूणाचल प्रदेश को केन्द्र शासित प्रदेश घोषित किया गया। अरूणाचल आदिवासी जनजातियों के लिए सुरक्षित प्रदेश है। चतुर्थ श्रेणी की सरकारी नौकरी यहाँ की आदिवासी जनजातियों के लिए सुरक्षित है। तृतीय श्रेणी की सरकारी नौकरियों में भी अस्सी प्रतिशत स्थान इनके लिए सुरक्षित है, बांकी बीस प्रतिशत में गैर अरूणाचल प्रदेश के लागों को नौकरी मिल सकती है।

बात अरूणाचल प्रदेश की हो और यहाँ की किशोरी यशा की चर्चा न हो तो बात अधूरी सी लगती है। अरूणाचल प्रदेश की राजधानी इटानगर से 18 किलोमीटर दूर यूपिया नामक कस्बे में एक दिन मैं सुबह सुबह टहल रहा था। लकड़ी से बने घर। हर घर के सामने छोटी सी फुलवारी। फुलवारी में फूलों के अलावा नारियल, सुपारी, पान, गोल मिर्च के लतरें और सब्जियों के पौधे बड़े आकर्षक लग रहे थे। चलते–चलते मैं एक घर के सामने रूक गया। घर के बाहर बने बाड़े के अंदर एक किशोरी पौधों की अतिरिक्त डालियों को तराश रही थी। अपने घर के बाहर खड़े अजनबी को देखकर उसने कहा आइये सर , अंदर आइये।

पहले तो मैं थोड़ा सकुचाया, लकिन यहाँ के लोगों के रहन–सहन के देखने के लिए मैं उसके धर के अंदर गया। मकान दो मंजिला था। ऊपर जाने के लिए लकड़ी की सीढियाँ बनी थीं। उस किशोरी के माता–पिता ने मेरा परिचय पूछा। मैंने

बताया–मैं यहाँ धूमने के लिए आया हूँ और यहाँ के रहन–सहन के बारे में जानना चाहता हूँ। इस छोटे से परिचय के उपरान्त उनलोगों ने मुझ अपिरिचत व्यक्ति के प्रति इतनी आत्मीयता दिखाई कि मैं उनकी मेजबानी का कायल हो गया। उनलोगों ने पहले मुझे एक ग्लास गुनगुना पानी पिलाया फिर लीकर वाली चाय पिलायी। किशोरी के पिता ने बताया कि उनकी बेटी का नाम यशा है। वह ग्यारहवीं कक्षा की छात्रा है। वह पढ लिखकर डॉक्टर बनना चाहती है। लेकिन अर्थाभाव के कारण वे लोग उसे ट्यूशन नहीं दे पाते हैं। उन लागों ने मुझ यशा से हिन्दी गीत भी सुनवाये। कितनी सुरीली और मीठी आवाज थी उसकी। आवाज में पहाड़ों की अनुगूंज बसी थी। मैंने यशा से कहा–तुम कितनी अच्छी हो। तुम मेरे बेटे से ब्याह करोगी?यशा के गोरे गालों पर लाज की लालिमा छा गई। थोड़ी सोचकर वह बोली–मैं आपके बेटे से कैसे व्याह करूँगी। मैं तो निशी जाति की हूँ। आपकी जाति अलग है।

'तो क्या हुआ?' मैंने कहा। यशा की माँ ने मुस्कुराते हुए कहा–आप तो इसे अपनी बहू बनाकर ले जाओ सर जी, लेकिन ब्याह में आपको चार मिथुन देना पड़ेगा।

'मिथुन क्या होता है?' मैंने पूछा

हमारी बातें सुनकर यशा के पिता ने कहा आपने यहाँ अभी तक मिथुन नहीं देखा? मिथुन गाय की एक प्रजाती है, जिसका कीमत लाखों में होती है। मिथुन हमारी मूल सम्पति है।मिथुन की संख्या के अनुसार यहाँ के लोगों की औकात जानी जाती है। यहाँ एक–एक आदमी के पास सौ–दो सौ मिथुन है। शादी–ब्याह और उत्सव आदि में मिथुन की बली दी जाती है।

'इतने मिथुन आपलोग रखते कहाँ हैं?मैंने आश्चर्य से पूछा।

'पहाड़ो पर जंगलों में'। उसने बताया।

'अरे तो आपलोग उन्हें पहचानते कैसे हैं'।–मैंने पूछा। उसने हँसते हुए कहा 'बहुत' आसान है। हमलोग मिथुन के कान को काटकर अलग अलग निशान बना देते हैं। मिथुन की देखभाल हमारी सामूहिक जिम्मेदारी है। हम एक दूसरे को जानकारी देते रहते हैं कि उसका मिथुन उस इलाके में चर रहा है।'

यशा की माँ ने उसी मजकिया लहजे में कहा–तो समझ गए न सर जी , आपको बघूमूल्य के रूप में चार मिथुन लेकर आना पड़ेगा और आप चिंता मत कीजिए, हमलोग भी आपके लड़के को कीमती पत्थरों की माला देंगे। उसकी कीमत भी चार पाँच लाख से कम नहीं होगी। यशा के पिता ने हमारी चुहल में शामिल होते हुए कहा। आपलोग जब बारात लेकर आयेंगे तो आपलोगों को गीत गाते हुए हमारे यहाँ आना होगा। हमलोग भी गीत गाते हुए आपका स्वागत करेंगे।

यशा के पिता स्वयं एक गीत गुनगुनाने लगे–' तुगं बो तपा देबे। रियापिन बो कपा देबे। तुगं रूनं रेने देबे रियापिन रूनं रेने देबे। तरा बो आवे जारे। नुंकी बो हिमि जारे । हिनाबो आबे जारे। तुगं रूनं रेने जारे। रियापिन बो तेपा देबे। उदुं पोबो लेरेंग रिबो। तरा बो आते नोना। मुमचि मुमते मुमनिंग तेबो। गरियं बो आबु जानि। हिना बो आबु जानि। गरें मुमचि मुमनिंग कातो। हिनो बो आवि जानि। गरिंग बो आने जामि।''

वह आदमी मस्त होकर गा रहा था। मेरा मन उसकी स्वर लहरियों में डूबता–उतराता बीयाबान पहाड़ियों में विचरण कर रहा था। गीत गाकर वह आदमी ठहाके लगाने लगा । मैंने कहा अब आप इसका अर्थ भी समझाईये। उन्होनें उसी प्रकार हँसते हुए कहा– मैं तो अनपढ़ आदमी हूँ । भला मैं इसका क्या अर्थ बताऊँ?

मैं ने यशा से कहा– 'तुम इसका अर्थ बताओ।'

उसने कहा–मैं ने तो अंग्रेजी माध्यम से पढाई की है, इसलिए ठीक–ठाक अर्थ नहीं बता पाऊँगी। '

मैंने कहा– 'तुम जितना समझ पाती हो वही बताओ'

उसने बताया कि वर पक्ष के लोग बरात लेकर गीत गाते आते हैं। मेरे अदृश्य देव सुनो। मेरे अदृश्य देव देखो। तुम हमारे साथ झूम–झूम कर नाचो। कन्या पक्ष के लोग उनसे पूछते हैं कि तुम श्रेष्ठ कुल के हो कि नहीं बोलो। तुम मेरी जाति के हो कि नहीं बोलो। तब हम तुम्हारे साथ नाचेगें। हम अदृश्य देव की साक्षी में नाचेंगे। दुल्हा जबाब देता है कि मैं अपने चोंगे में बहुत दारू लाया हूँ। मैं अपने साथ बहुत खाना लेकर आया हूँ। मेरे पास बधूमूल्य बहुत कम है। तुम यह सब ले लो। मेरी दुल्हन मुझे दे दो। हम दुल्हन के लिए आये हैं। हम सज–सँवर कर आये हैं। हम हिना बहू के लिए आए है। हम युवक–युवती मिलकर आये हैं। आओ तुम हमें देखो।

यशा ने मझे बताया कि यहाँ 26 जनजातियां हैं । प्रत्येक जनजाति का अपना संविधान है। अपनी भाषा–संस्कृति है। इनकी भाषा तिब्बती –वर्मा भाषा परिवार से संबंध रखती है। निशी, अपातानि, मोंमपा, इदुममिस्मी, हिलमिरी, सदुक्पेन, नोक्ते, तागिन, तंग्सा, खाम्ती, गालो, आदी, बांग्चो, सेरदुपेन्स, तवांग यहाँ की प्रमुख जनजातियाँ हैं, जो इण्डो–मंगोल प्रजाति से संबंध रखती है।

गोरा रंग, हल्की भौहें, सफाचट दाढ़ी–मूँछ, छोटी आंखें, चपटी नाक और ठिगनी कद–काठी को देखकर ही लगता है कि ये मंगोलियन मूल के हैं। यशा ने बताया कि

इनमें निशी जनजाति की प्रमुखता है। इनकी भाषा निशी भाषा कहलाती है। लेकिन इनकी अपनी लिपि नहीं है। ये लोग अपनी वीरता के लिए जाने जाते है। इनका समाज जातिविहीन समाज है।। लेकिन एक गोत्र के लोग आपस में विवाह नहीं करते हैं। जैसे नाबुम जनजाति की शादी नाबुम से, तीची जनजाति की शादी तीची से नहीं होती है।

यहाँ की जनजातियों में बहुविवाह को सामाजिक मान्यता प्राप्त है। यहाँ के एक युवक ने मुझे बताया कि उसके पिता ने चार विवाह किये हैं। मैंने हैरत से पूछा– ' तुम कितने भाई–बहन हो?'

उसने पान में कच्ची सुपारी और चुना लगाकर मुझे देते हुए कहा–'पहले आप ताम्बूल खाइये, फिर मैं गिनकर बताता हूँ।

उसने अपनी उँगलियों पर गिनते हुए बताया–' मेरी माँ से तीन, दो बहन और एक भाई। दूसरी माँ से पाँच तीन लड़का और दो लडकी। तीसरी माँ से केवल एक लड़का। चौथी माँ से दो लड़की और दो लडका। '

मैंने पूछा–' कुल कितने हुए?

उसने मुस्कुराते हुए कहा–' खुद गिन लिजिये।'

मैं उसके बताए अनुसार नोट्स ले रहा था। मैंने गिनकर का– कुल तेरह बच्चे। आखिर तुम्हारे पिता जी इतने लोगों का भरण पोषण कैसे करते हैं?'

गाँव में थोड़ी खेती है। मेरी माताएँ भी अलग अलग कुछ काम करती है। बहने ब्याहकर अपने–अपने घर चली गई। जो बच्चे बड़े हो गये, वे अपने काम–काज के लिए बाहर निकल गये। जैसे ,मैं अपनी पत्नी और बच्चों के साथ बाहर रहता हूँ उस युवक ने मुझे बताया कि अरूणाचल प्रदेश में प्रत्येक जनजाति का अपना समाज है। हर समाज का एक मुखिया है, जो समाज के लोगों के द्वारा चुना जाता है। अमूमन समाज के सबसे बुजुर्ग व्यक्ति को ही मुखिया बनाया जाता है।इनका समाज इसी मुखिया के द्वारा परिचालित होता है। नृत्य–संगीत जैसे सांस्कृतिक कार्यक्रमों में प्रायः युवा पीढ़ी के लोग हिस्सा लेते हैं। इनकी सांस्कृतिक परम्परा काफी उन्नत है। मापिन, सोलुंग, न्योकुम इनके प्रमुख त्योहार हैं। फरवरी के पहले सप्ताह में न्योकुम त्योहार बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। त्योहारों में स्त्री पुरूष अपने पारंपरिक पोशाक 'पेर' पहनते हैं। स्त्रियाँ अधोवस्त्र के रूप में रेशमी वस्त्र 'गाले' पहनती है और गले में नीले, हरे मूंगा जैसे पत्थरों की माला 'दोय' धारण करती है। सिर पर बांस की खूबसूरत टोपी, गले में लटकती कटार, उजले, पीले कीमती पत्थरों की माला और तन पर पशुचर्म से बनी पोशाक पहनकर पूरूष उत्सव में भाग लेते हैं। त्योहारों में मुख्य रूप से मिथुन की बलि दी जाती है। इसके अलावा हिरण, सुअर, बकरा, मुर्गा आदि की भी बलि दी जाती है। इनके भोजन में बांस के कोमल पौधे से बना अचार जरूर शामिल रहता है। बांस के सूखे चूर्ण को यूप और रसयुक्त बड़े टुकड़े से बने अचार को इकुंग कहते हैं।

अरूणाचल के लोग उबला हुआ भोजन ज्यादा पसंद करते हैं। उनके भोजन का भी अपना समय है। सूर्यास्त के पहले वे रात्रि का भोजन कर लते हैं। सुबह नौ बजे तक उनका दिन का भोजन हो जाता है। यहाँ काफी उमस होती है, इसलिए यहाँ के लोग ढीले वस्त्र पहनते हैं।

एक दिन मैं एक स्कूल के बगल से गुजर रहा था बच्चे– बच्चियाँ मैदान में प्रार्थना कर रहे थे प्रार्थना समाप्त होने पर बच्चे शपथ ले रहे थे–हम भारतवासी हैं। भारत माता की रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य है। यहाँ के विद्यालय को देखकर मुझे समझ में आई कि पूरे भारत में सरकारी स्कूलों का मूल ढाँचा लगभग एक जैसा है। वही टूटी हुई खिडकियाँ। खपरैल या एसबेस्टस की छप्पर। रंगहीन दीवारें। मैं यहाँ के शिक्षक–शिक्षिकाओं से मिला। उनमें एक शिक्षक बिहार के थे। वे नाहरलागून से यहाँ बस के द्वारा आते हैं। उन्होनें मुझे बताया कि यहाँ अंग्रेजी राजभाषा के रूप में व्यवहृत होती है। यहाँ के विद्यालयों में अंग्रेजी प्रथम भाषा के रूप में , हिन्दी द्वितीय भाषा के रूप में , संस्कृत और असमी तृतीय भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है। यहाँ के लोग शांत मिलनसार और सरल स्वभाव के हैं। वे अपने आपसी विवादों को किसी बुजुर्ग के यहाँ सामूहिक रूप से मिल–बैठकर संवाद के द्वारा ही निबटा लेते है। यहाँ जनसंख्या का घनत्व 8 व्यक्ति वर्ग किलोमीटर है।

महज जनसंख्या का कम होना ही यहाँ शान्ति की वजह नहीं है। मैंनें देखा है पहाड़ों के लोग अमूनन शांत प्रकृति के होते है। वहाँ के लोग चिल्लाते नहीं हैं, बच्चे शोर मचाते नहीं है। यहाँ तक कि यहाँ के कुत्ते भी कम भौकते है। प्रशांति पहाड़ों की अपनी विशेषता है।

कभी अरूणाचल प्रदेश में बौद्ध धर्मावलंबियों की बहुलता थी, लेकिन अब यहाँ के अधिकांश लोगों ने क्रिश्चियन धर्म अपना लिया है। यहाँ सभी जाति–धर्म के लोग निवास करते हैं। उनके बीच कोई वैमनश्य का भाव नहीं है। जगह–जगह बौद्ध बिहार, चर्च और मंदिर हैं। लेकिन मस्जिदों की संख्या नगन्य है।

यूपिया में भारत तिब्बत सीमा सुरक्षा सैनिकों का कैम्प है, जो अभी निर्माण की प्रक्रिया में है। यहाँ सैनिक तम्बुओं में रह

रहे हैं । उन सैनिकों ने बताया कि हमारे यहाँ अभी इटानगर तक रेल की पटरियाँ बिछी है। यहाँ से लगभग साठ किलोमीटर की बस यात्रा करने के बाद तीन चार दिनों तक पैदल चलकर भारतीय सैनिक सीमा पर पहुँचते हैं, जबकि चीन ने सीमा तक पहुँचने के लिए रेलवे की व्यवस्था कर ली है। अपनी सीमा सुरक्षा के लिए अभी भारत को काफी काम करना है।

अरूणाचल प्रदेश में बोमदिला और तवांग के बीच स्थित एक बहुचर्चित स्थान है– मेजर जसवंत सिह की समाधि। उसे लोग आदर के साथ जसवंत सिंह का घर कहते हैं। यहाँ से साठ किलोमीटर की दूरी पर चीन की सीमा है। 1962 में एक पहाड़ी दर्रे से चीनी सैनिक हमारी सीमा में प्रवेश कर रहे थे उस मोंर्चे पर तैनात भारतीय सेना चीनी सैनिकों को रोकने में असफल रही। मेजर जसवंत सिंह ने अकेले उस मौर्चे पर कई दिनों तक चीनी सैनिकों को रोके रखा। शीला नामक एक स्थानीय लडकी ने उनके पास गोला बारूद पहुँचाकर उनकी मदद की। कई दिनों तक लड़ते हुए मेजर जसबंत सिंह शहीद हो गये। शीला भी शहीद हो गई । शीला की स्मृति में उस दर्रे को शीला पास नाम दिया गया है। इस अंचल में सालों भर काफी ठंढ रहती है। सैनिकों को विश्वास है कि जसवंत सिंह की आत्मा यहाँ निगरानी करती है। आज भी मेजर जसवंत सिंह को ड्यूटी पर तैनात माना जाता है। प्रत्येक वर्ष उन्हें छुट्टी दी जाती है। उनका वेतन उनके घरवाले को भेज दिया जाता है।

वास्तव में अरूणाचल अरूण का अंचल है। भारत में सबसे पहले यहीं सूर्योदय होता है। यहाँ की तीखी धूपको देखकर यहाँ के भोले भाले लोग पूछते है–' क्या दूसरे प्रदेशों में भी सूरज इतना ही करीब होता है?वाकई यहाँ के सूर्योदय और सूर्यास्त का अपना समय है। यहाँ रात्रि के तीन बजे तक क्षितिज पर सूरज का उजाला फैल जाता है। उसी प्रकार संध्या के साढे पाँच बजे तक अंधेरा घिरने लगता है। यहाँ की हरियाली, नदियाँ झरने और पहाड़ ऐसे प्राकृतिक वैभव है जिन्हें कभी भुलाया नहीं जा सकता है।

कविता

हरसिंगार रखो

मन के द्वारे पर
खुशियों के
हरसिंगार रखो
जीवन की ऋतुएँ बदलेगी
दिन फिर जायेंगे
और अचानक आतप वाले
गौसम आयेंगे
संबंधों की
इस गठरी में
थोड़ा प्यार रखो
सरल नहीं जीवन का यह पथ
मिलकर काटेंगे
हम अपना पाथेय और सुख –दुख
सब बाँटेगें
लौटा देना प्यार
फिर कभी
पर
अभी उधार रखो.....।

त्रिलोक सिंह ठकुरेला
मो०–9460714267

इंतजार

विरहता की टीस से
उभर जाता है प्रेम ज्वार–भाटे सा
चाहत चकोर सी
आकर्षण दे जाती चन्द्रमा को

आँगन में चांदनी की छाया
जब बादलों की ओट से
कराती पल पल इंतजार
लगता है चंद्रमा के रूख पे
डाल रखा हो बादलों ने नकाब

सोचती हूँ
अगर तुम आ जाओ
तो लिपट जाऊँ बेल की तरह
और दिखा सकूँ
प्रेम के मील –पत्थर बने
ताजमहल को

विरहता में
समझ सको प्रेम का मतलब तो
इंतजार के मायनों में
तुम्हें चंद्रमा की चांदनी
और भी उजली नजर आने लगेगी
जब पास होगे तुम मेरे ।

संजय वर्मा 'दृष्टि'
मनावर, धार मध्यप्रदेश
मो0–9893070756

समीक्षा

अज्ञेय की औपन्यासिक विहंगम-दृष्टि

शिवानी चार्ज
व्याख्याता– हिन्दी विभाग
श्यामा प्रसाद मुखर्जी महाविद्यालय नई दिल्ली

अच्छी कुंठा रहित इकाई
साँचे ढले समाज से
अच्छा अपना ठाठ फकीरी
मँगनी के सुख साज से .....

अज्ञेय की ये पंक्तियाँ उनके रचनाकर्म का मर्म खोलती प्रतीत होती है। समय संदर्भों से बिद्ध यह रचनाकार व्यक्ति की विवेक वयस्कता का पक्षधर है, बंधी लीकों से उसे इनकार है। अज्ञेय के उपन्यासों को पढते हुए यह बात स्पष्ट हो जाती है।

अज्ञेय अपने तीन उपन्यासों के लिए प्रसिद्ध हैं 'शेखर' :एक जीवनी (दो खंडों में) 'नदी के द्वीप' और 'अपने–अपने अजनबी।' हिन्दी कविता के क्षेत्र में ख्यातनाम होते हुए भी 1941 में 'शेखर' के प्रकाशन के साथ वे धूमकेतु की तरह प्रभावी सिद्ध हुए। यह उपन्यास हिंदी कथा संसार में एक ओर विशिष्ट रचनात्मक एवं शिल्पगत मोड़ लेकर आया तो दूसरी ओर तीव्र आलोचनात्मक प्रतिक्रियाएं, इससे पूर्व मन की तहों में उतरकर 'व्यक्ति' और उसके आंतरिक उद्वेलन को इस प्रकार पहचाना नहीं गया था। कम से कम हिन्दी में तो नहीं। शैशव की स्मृतियों और आत्मिक संघर्षों के माध्यम से जैसा वयस्क शेखर बनता है उसका खुलासा इतने बेवाक ढंग से करना नवीनता का द्योतक है।

'शेखर' को समझने के लिए अज्ञेय रचित उसकी भूमिका महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार घनीभूत वेदना की केवल एक रात में देखे हुए Vision को शब्दबद्ध करने का प्रयत्न है 'शेखर'। शेखर सोचता है कि अगर यही मेरे जीवन का अंत है तो अब जीवन का मोल क्या रहा.....व्यक्ति के लिए समाज के लिए, मानव के लिए ...? असल मृत्यु के आलोक में स्वयं को परखता हुआ शेखर हिंदी का पहला प्रतिनायक है। आत्मकथनात्मक शैली में लिखे गए इस उपन्यास का नायक व्यक्तित्व की गरिमा के लिए संघर्षरत है। प्रेमचन्द के पात्र मूलतः वर्गीय है। जबकि शेखर की पीड़ा निजी है। वह एक व्यक्ति–पात्र है, उसके जैसे जीवनानुभव सबके साथ घटते होंगे, पर शेखर बड़ा जोखिम उठाकर उनको जस–का– तस बयान करता है। 'शेखर' एक 'व्यक्ति' के व्यक्तित्ववान ' बनने की प्रक्रिया का दस्तावेज है।

शिल्पगत दृष्टि से 'शेखर ; एक जीवनी' का गठन अत्यन्त सुनियोजित है। उसके गठन में कहीं शिथिलता नहीं है। पहले नक्शा बनाकर फिर सजगता पूर्वक भवन निर्माण की बारीक सफाई उसकी योजना की खूबी है। तीन भागों में परिकल्पित इस उपन्यास के दो भाग ही प्रकाश में आए। प्रथम भाग 'उत्थान' में 'प्रवेश' के अलावा चार खंड है– उषा और ईश्वर, वीज और अंकुर, प्रकृति और पुरूष तथा पुरूष और परिस्थिति। द्वितीय भाग 'संघर्ष' के भी चार खंड हैं– पुरूष और परिस्थिति, बंधन और जिज्ञासा, शशि और शेखर तथा धागे , रस्सियाँ, गुंझर।

लेखक ने 'स्व' की परख के लिए बड़े कौशल से फ्लैशबैक तकनीक का प्रयोग इस उपन्यास में किया है। बचपन की यादों की गली में शेखर झाँकता है। '' यह एक विचित्र बात है कि उसके जीवन की जो सबसे पहली एक दो घटनाएँ उसे ठीक तौर पर अपनी अनुभूति सी याद है, वे उन तीन महती प्रेरणाओं का चित्रण करती है।.. अहंता, भय, और सैक्स अजायबघर के बाघ की असलियत पहचानकर शेखर समझ लेता है कि डर डरने से होता है।

मनोवैज्ञानिक हिदी उपन्यास की बृहत्रयी नामक अपनी पुस्तक में डॉ0 रणवीर रांगा कहते है कि ''शेखर के भीतर विद्रोह–बीज पनपने के लिए आवश्यक था कि उसके माता– पिता अनमेल स्वभाव के होते और वे दोनों बाल मनोविज्ञान से अपरिचित होते'' ऐसी ही है। बडी बहन सरस्वती माता की स्थानापन्न बन जाती है, सखा एवं गुरू बन जाती है। वयः संधिकाल का उद्विग्न शेखर शारदा की ओर झुकता है। कॉलेज के दिनों में उसका विद्रोह सामाजिक आधार पर जाता है वह समाज परिवर्तन की अनेक योजनाऐं बनाता है। अछूतोद्धार एवं रात्रि पाठशाला की ओर कदम बढ़ाता है, किशोर शेखर जान गया है कि विद्रोह आत्मा का कृत्रिम परिवेष्टन नहीं, उसका अभिन्तम अंग है।

दूसरें भाग का युवा शेखर वास्तविक जीवन के सत्यों और अनुकूल– प्रतिकूल परिस्थितियों के मध्य स्वयं को नए सिरे से गढ़ता है। बंदी गृह के दस महीने से स्वातंत्र्य और अस्मिता का नया अर्थ बताते हैं... शेखर मानों दीक्षित हो जाता है। मोहिसिन ,राम जी, बाबामदन सिंह आदि पात्र उसके व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान करते हैं। प्रकाशन व्यवसाय एंव साहित्य रचना के द्वंद्व भी यहां उजागर होते हैं। शशि के माध्यम सामाजिक वर्जनाओं के नए अध्याय खुलते हैं 'व्यक्तित्व की स्वतंत्रता' का इतना प्रभावी कथन इससे पूर्व हिन्दी उपन्यास में नहीं देखा गया । बतौर अज्ञेय। ''शेखर की खोज'' अंततोगत्वा स्वातंत्रय की खोज है' और

उसके माध्यम से व्यक्तित्व की । डॉ0 नगेन्द्र के अनुसार ''हिन्दी की एक महत्वपूर्ण वस्तु... मनोगुंफी की तह में इतना गहरा घुसने वाला कलाकार हिंदी ने दूसरा पैदा नहीं किया।''

असंख्य विभिन्न मौकों पर विभिन्न टूटे टूटे अव्यक्त विचारों को किसी अन्तःशक्ति से भाँपकर एकत्र किए गए मानचित्र का पुंज है शेखर जो स्थलकाल के एक बिदु पर खड़े होकर विगत को पुनः जीने के क्रम में वर्तमान एवं भविष्य का एक नया अर्थ पा जाता है। इस उपन्यास की कथा के केंद्र में एक क्रांतिधर्मी भारतीय तरूण है, जो तोड़ने का मंत्र लेकर चलता है पर नवसृजन की अदम्य आस्था भी उसमें है। वह अपनी कमजोरियों को पहचानता है। वह नियति का गुलाम न होकर उसका प्रतिद्वंद्वी है।

'नदी के द्वीप' अज्ञेय का दूसरा उपन्यास है। 'शेंखर में व्यक्तित्व का क्रमशः विकास होता है।' नदी के द्वीप' में व्यक्ति आरंभ से ही सुगठित चरित्र लेकर आते हैं। शेखर व्यक्ति स्वातंत्र्य के प्रश्न को लेकर चलता है परंतु नदी के द्वीप में प्रेम और मुक्ति के प्रश्न को स्थान मिला है। इस उपन्यास के मुख्य पात्र हैं। रेखा, भुवन, चंद्रमाधव और गौरा। रेखा के विषय में वरिष्ठ आलोचक नमिचंद जैन ने कितना सटीक लिखा है 'वह' स्नेह कातर है, प्रणयाकांक्षिणी है, पर दीन नहीं । दीनता और क्षुद्रता उसमें कहीं भी नहीं है। उसके व्यक्तित्व में जो कुछ मुखर है वह है अमानवीय सामाजिक विधान के प्रति विद्रोह।'

'त्यागपत्र' की मृणाल जी नहीं पाती जीवन से त्यागपत्र दे देती है पर नदी के द्वीप रेखा की त्रासदी को डॉ0 रमेशचंद्र से संयुक्त कर अज्ञेय अपनी अप्रतिम कलात्मक सूझ–बूझ का परिचय देते हैं। यह उपन्यास यथार्थ का सरोकार है । 'रियल' की पहचान ही उसका सत्य है। रेखा का भुवन के प्रति समर्पण भी घोर यथार्थ है। वह भुवन से कहती है कि एक समर्पण मेरे भीतर से रहा था पर यथार्थ को मैं समर्पण करना नहीं चाहती थी वह डर... यथार्थ को समर्पण करने का डर क्या होता है भुवन, तुम जानते हो?'

हम नदी के द्वीप हैं।... हम नहीं चाहते, हमें छोड़कर स्रोतस्विनी वह जाए... रेखा कहती है,'' हम अधिक से अधिक इस प्रवाह में छोटे–छोटे द्वीप हैं उस प्रवाह से घिरे हुए भी, उससे कटे हुए भी.... ।'

गौरा और रेखा इस उपन्यास के दो प्रतिनिधि स्त्री पात्र हैं। नदी के द्वीप के कथा संघटन की एक विशिष्ट उपलब्धि हैं रेखा और गौरा के पारस्परिक संबंधों का अंकन। ''भुवन को बीच में रखकर भी वे दोनों सहज हैं। ईर्ष्यामुक्त इस प्रेम की उपलब्धि असाधारण है।

गौरा अपने जीवन की हरेक परीक्षा को पार करती है और पहले से भी सतेज हो उठती है। चंद्रमाधव एक अवसरवादी व्यक्ति है जो अपनी क्षुद्रता छिपा तक नहीं पाता। रेखा को अपराध बोधहीन एवं अकुंठ दिखाकर अज्ञेय ने हिंदी उपन्यास में नारी का एक नया रूप गढ़ा है। लेखक ने रेखा के चरित्र को नीतिनिरपेक्ष भूमिका में चित्रित कर अपराध बोध से पीड़िता नायिकाओं के वर्ग से अलग रखा है।

इस उपन्यास की कथा शिक्षित समाज के मध्य अपने स्त्रोंतों को खोजती है। एक ओर तो इसके पात्र भावनाओं से चालित लगते हैं, पर दूसरी ओर बौद्धिक अभिव्यक्तियाँ भी उनमें रची बसी दिखती है। स्त्री पुरूष यहाँ समान स्तर पर मिलते हैं। उपन्यास में लेखक ने 'क्षण की महत्ता' का भी प्रतिपादन किया है। रेखा कहती है, ' मेरे लिए काल का प्रवाह नहीं, केवल क्षण और क्षण का योगफल है। 'व्यक्ति और व्यक्ति के कॉन्टेक्ट को रेखा अपरिचय के सागर में एक छोटा किन्तु मूल्यवान द्वीप मानती है।

आत्मनेयपद में अज्ञेय लिखते हैं–नदी के द्वीप समाज के जीवन का चित्र नहीं है, एक अंग जीवन का है; पात्र साधारण जन नहीं है एक वर्ग के व्यक्ति हैं और वह वर्ग भी संख्या की दृष्टि से अप्रधान है।... ''यह सच है कि इस उपन्यास के पात्र असाधरण हैं। असाधारण होते हुए भी वे संभाव्य हैं । ऐसे नॉनकनफर्मिस्ट (असाधारण) पात्र हमारे बीच होते है सदा से रहे हैं।

'अपने अपने अजनबी' अज्ञेय का तीसरा उपन्यास है। 'मृत्यु' से साक्षात्कार को विषय बनाकर इतने सीमित कलेवर में मानव नियति–बद्धता का ऐसा मार्मिक चित्रण अन्यत्र दुलर्भ है। इस उपन्यास पर अस्तित्ववादी विचारधारा का प्रभाव माना जाता है। अस्तित्ववाद एक दार्शनिक एवं साहित्यिक चिंतनधारा है। यूरोप की भूमि पर दो महायुद्ध लड़े गए जिनकी अबूझ जटिलता के साथ विज्ञान–प्रविधि के विस्तार ने विकास के साथ संघातक अस्त्र –शस्त्रों को जन्म दिया। अपनी बनाई मशीन के आगे आदमी ठिगना हो गया ।

सर्वप्रथम हीगेल ने अस्तित्ववादी अवधारणाओं की बात की मूलतः, रचनात्मक अलगाव भी। फिर कीर्केगार्द, कार्ल यास्पर्स और मार्टिन हाइडेगर जैसे विचारक आए इस संदर्भ में निरीश्वरवाद नीत्शे के योगदान को भी नकारा नहीं जा सकता। गैब्रीयल मार्सेल एवं सार्त्र भी बड़े विचारक हैं ,जिन्होंने इस विचारधारा का पोषण किया।

प्रस्तुत उपन्यास पर कार्ल यास्पर्स और गैब्रीयल मार्सेल द्वारा प्रतिपादित आस्थावादी इशाई अस्तित्ववाद का प्रमाण दीखता है। उपन्यास में मुख्यतः दो ही पात्र हैं और तीन अध्याय के उनके बीच बँटे हैं। थके सैलानी युवती है जो अपने मित्र पॉल सोरेन के साथ बर्फीले प्रदेशों के साहसिक अभियान पर निकलती है पर नियति के धागे उसे एंकांत की आंकांक्षा कर रही कैंसर पीड़ित वृद्धा सेला के काठ के घर में पहुँचा देते हैं जो बर्फ में घूस

गया है। जीना चाहती हैं और सेल्भा अकेले मरना.... पर वरण की स्वतंत्रता है क्या सेल्भा इस उपन्यास में दो किरदार निभाती है–तरूणी सेल्भा डॉलवर्ग और वृद्धा सेल्भा एकेलोफ का ।

वर्फ में धँसे काठ के घर में पाठक स्वयं को अजनबी परिस्थिति में पाता है। मृत्यु की छाया पूरे परिदृश्य पर छा जाती है। बंद होने के दसवें दिन से योके डायरी लिखना आरंभ करती है। येाके सेल्भा के अलावा कोई तीसरा भी वहाँ मौजूद है और वह है मृत्युबोध । सेल्फा ईश्वरवादी है और योके निरीश्वरवादी। उनका यह वैचारिक अंतर इनके मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक क्रियाकलपों तथा संवेगों में मुखरित होता है। सेल्भा कहती है ''हाँ यूँ कि, मैं भगवान को ओढ़ लेना चाहती है...।'' ईश्वर के अवसान की बात रात्रि के समान योके भी करती है। जुड़ी है ईश्वर पर जो उसे इतना अकेला करके भी अकेला नहीं छोड़ रहा।

सेल्भा के मृत देह पर एक डोल बर्फ डालना योके के विरोध शमन का सांकेतिक चित्रण है। अन्ततः वह आस्था के प्रतीक जगन्नाथन को चुनती है।

डॉ0 भोलाभाई पटेल के अनुसार इस उपन्यास के लेखक 'प्राची और प्रतीची 'की विभिन्न दृष्टियों से अवगत होकर 'प्राची' के समर्थक के रूप में आते हैं। जबकि डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार शायद लेखक की इच्छा के बावजूद भी पश्चिम को ही स्थापित हुई है...

अज्ञेय के उपन्यास कुछ भिन्न है –भाषा में , शिल्प में, पात्र नियोजन एवं विचार भूमि में, पर वे सामाजिकता से शुन्य नहीं है, हाँ उनकी सामाजिकता आम सामाजिकता से पृथक है। उनके तीनों उपन्यास बौद्धिकता पूर्ण हैं लेखक के सृजनशील मानस ने अनेक स्थानों आदि घटनाओं से प्रेरणा एवं प्रभाव ग्रहण किया, पर उन्हें अपने अनुभव सूत्र में ढ़ालकर एक नया आकार दिया।

अज्ञेय के प्रथम दो उपन्यासों पर अनेक पाश्चात्य कृतियों का प्रभाव लक्षित किया गया है। शेखर पर तुर्गनेन के 'फादर्स एंड चिल्ड्रन,' रोमा रोकॉ के ज्यों क्रिस्तोफ मार्सेल पुरूस्तके रिमेंबरेंस आव द थिंग्स पार्टस जेम्स ज्वायस के 'पोट्रेट' आफ द आर्टिस्ट एंड ए यंगमैन' तथा डी0एच लारेंस' के 'सेंस एंड लवर्स' का प्रभाव विद्वानों ने माना है इसी प्रकार नदी के द्वीप पर चालर्स मोर्गन के द फाउन्टेन आद्रजीद के स्ट्रेट इज द ग्रेट; डी0एच0 लारेंस के 'लेडी चेटरलीज लवर' एवं उनकी कविता का प्रभाव माना गया है।

इन प्रभावों को स्वीकारते हुए भी यह कहना होगा कि इनसे अज्ञेय की अप्रतिम मौलिकता एवं निजी रचना शैली की कोई हानि नही होती... और शेखर तो शेखर है। वह अनेक पाश्चात्य पात्रों का सजातीय होकर भी अपने में अनूठा है।

कहना न होगा कि बंधी लींकों का अस्वीकार अज्ञेय की मानस भूमि का आधार है। वे संघर्ष को महत्वपूर्ण मानते हैं। ताकि परिवर्तन के मानी बने रह सके। परंपरा समाज, रचनाकर्म व्यक्तिगत संबंधों आदि के प्रति किए गए उनके समस्त प्रयोग, व्यक्तित्व की स्थापना हेतु किए गए संघर्ष के विविध पहलू हैं। शेखर की द्विविधा भी संघर्ष है। रेखा की अकुण्ठ प्रेम भी और योके की अनास्था भी.... क्योंकि यही मुक्ति का एकान्त द्वार है।

लघु कथा

वाह! वाह! : छिया–छिया

शहर में नैतिकता पर एक संगोष्ठी आयोजित थी। इस संगोष्ठि में शहर के कई गणमान्य बुद्धिजीवियों का जमावड़ा था। एक विधिज्ञ नेता जी भी थे। उन्हें मंच पर विशिष्ट अतिथि का सम्मान मिला।

अपनी बारी आने पर उन नेताजी ने परिचर्चा की विषय –वस्तु पर अत्यंत ओजपूर्ण वक्तव्य दिया। अपने वक्तव्य में उन्होनें कहा–'' आज मनुष्यों की 'कथनी और करनी' में भारी अंतर दृष्टिगोचर होता है जो उनके नैतिक पतन का द्योतक है। उनके आचरण से समाज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, संबंधो की प्रगाढ़ता समाप्त होती है। शत्रुता बढ़ती है। मनुष्य की ऐसी प्रवृति की कड़ी आलोचना करते हुए उन्होंने लोगों से सत्पथ पर चलने का आह्वान किया। उनका वक्तव्य सुनकर लोग वाह वाह कर उठे। खूब तालियां बजीं।

उन नेता जी के पुत्र ने शहर के एक संभ्रांत मुहल्ले की एक अबला के मकान का एक हिस्सा पर जबरन कब्जा कर लिया था। काफी अनुनय– विनय के बावजूद भी जब वह अपना अवैध कब्जादारी हटाने को तैयार न हुआ तो 'मरता क्या न करता'। ऐसी परिस्थिति में मकान मालकिन ने उसके विरूद्ध न्यायालय में मुकदमा दायर कर दिया।

नेता जी ने अपने पुत्र को नैतिकता का पाठ पढ़ाने की बजाय न्यायालय में अपने पुत्र की पैरवी शुरू कर दी। जब लोगों को यह बात पता चला तो जिन मुँह से उनके लिए कभी 'वाह–वाह' निकले थे उनसे अब ''छिया–छिया'' निकलने लगी।

राजा राघव , अररिया (बिहार)

कहानी

प्रेम और विश्वास

मनजीत शर्मा 'मीरा'
चंडीगढ
मो0991482239

चलो अगर ये मान भी लिया जाए कि मैं रीतिका से प्यार नहीं करता हूँ तो यह भी सिद्ध नहीं होता ना कि मैं तुमसे नफरत करता हूँ.... तुमसे प्यार करता हूँ। पिछले बीस बरसों में क्या एक बार भी ऐसा हुआ कि किसी औरत या लड़की की तरफ मैं आकर्षित भी हुआ? किसी से मेरी मित्रता रही? संबंध बना? तुम्हीं से मैंने प्यार किया और शादी की। पिछले इन बीस बरसों में पूरी तरह समर्पित और ईमानदार रहा हूँ मैं तुम्हारे और इस घर के प्रति । क्या इससे ये सिद्ध नहीं होता कि मैं तुमसे प्यार करता हूँ...?

''नहीं होता अनिकेत ....बिलकुल नहीं होता। पिछले बीस बरसों में बेशक तुमने सिर्फ मुझसे प्यार किया है, बच्चों से प्यार किया है, घर के प्रति समर्पित रहे हो... पर अब नहीं। अब नहीं अनु.... अब तुम्हारी किसी बात पर विश्वास नहीं आता। अब तुम मुझ से प्यार नहीं करते अनिकेत और सिर्फ यही बात मैं तुम्हारे मुंह से सुनना चाहती हूँ। सिर्फ एक बार मुझे कह दो.... ।'' माही तैष में आ गई।

क्या कह दूँ और क्यों कह दूँ....?अनिकेत उठकर माही के पास आ गया और गले में बॉह डालकर बोला– ''क्यों लगता है तुम्हें ऐसा? कुछ भी तो नहीं बदला है, माही। उसी तरह तुम्हारे साथ ऑफिस जाता हूँ, लंच करता हूँ बातें करता हूँ। शाम को तुम्हारे साथ ही घर आता हूँ। रात तुम्हारे बच्चों के साथ बैठकर टी.बी. देखता हूँ, डिनर करता हूँ तुम्हारे साथ ही सोता हूँ। क्या बदला है माही... बताओ क्या बदला है... ?

तुम्हारा मन बदल गया है,अनिकेत। तुम बदल गये हो। साथ ही तुम ये भी भूल गए हो कि वो रीतिका तुमसे बीस बरस छोटी है। एक बच्चे की मां है, किसी की पत्नी है, किसी की बहू है, अपने परिवार की इज्जत है। तुम अपने ही घर में आग नहीं लगा रहे हो अनिकेत, उसका घर भी बर्बाद कर रहे हो ।अगर वह तुम्हारी ओर आकर्षित है भी, तो भी तुम्हारा फर्ज बनता है कि तुम उसे समझाओ। कहां गए तुम्हारे सारे आदर्श जिनका दिखावा तुम अपनी कहानियों और कविताओं में करते रहते हो?भटक रहे हो तुम... ।' कहते हुए माही ने तहाकर रखे कपड़े उठाए और अलमारी में रख गुस्से में जोर से आलमारी बंद कर दी।

''कोई नहीं भटक रहा है माही.... ना मैं और ना ही रीतिका। सिर्फ तुम भटक रही हो। वह मुझसे बाते करती है, मेरा कहना मानती है, मेरा सम्मान करती है, मेरे लेखन की प्रशंसिका है... और एक अच्छे मित्र की तरह मैं भी हमेशा उसका मार्गदर्शन करता हूँ । उसे आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता हूँ सिर्फ इसलिए कि वह एक बहुत अच्छी लड़की है।''

मैंने ये कभी नहीं कहा कि वो बुरी लड़की है। मैं सिर्फ इतना कह रही हूँ कि वह तुम्हें बहुत अच्छी लगने लगी है। वह सुबक पड़ी।

''तो इसमें बुराई क्या है...?वह अच्छी है और इसलिए मुझे भी अच्छी लगने लगी है। इसका ये अर्थ तो नहीं है कि तुम मुझे बुरी लगने लगी हो। अनिकेत अपनी बात पर डटा हुआ था।

सिर्फ अच्छा लगना और प्यार हो जाने में अंतर होता है। तुम्हारे दिमाग में उसके लिए जो प्यार है, वो झलकता है तुम्हारे चेहरे से, तुम्हारी बातों से। ''

'' तो इससे भी तुम्हारे अधिकारों और तुम्हारे प्रति मेरे प्रेम में कोई कमी नहीं आई। तुम्हारा जो दिमाग है ना उसमें शक का कीड़ा घुस गया है। निकाल दो इस कीड़े को अपने दिमाग से। ये गलतफहमी तुम्हें मानसिक रूप से बीमार कर देगी। बीस बरस छोटी है वो मुझ से।... और पूरी तरह समर्पित है अपने पति, बच्चे और घर के प्रति। हम एक –दूसरे के मित्र है और मित्र ही रहेंगे। इस मित्रता को हम किसी रिश्ते में नहीं बदलने जा रहे। अगर तुम सोच रही हो कि हम अपनी जिम्मेदारियों को छोड़कर भाग रहे है तो तुम गलत सोच रही हो।'

''किसी भी लड़की या औरत का तुम्हारे प्रति प्रेम या मित्रता मेरे लिए कोई महत्व नहीं रखती। मेरे लिए ये महत्वपूर्ण है कि तुम उससे प्यार करते हो या नहीं। क्योंकि यदि तुम उससे प्यार करते हो तो जाहिर है कि अब मुझसे नहीं करते और जो इंसान मुझसे प्यार नहीं करता मैं उसके साथ नहीं रह पाऊगी...''

इसलिए मैं बार –बार कह रहा हूँ कि मैं सिर्फ तुमसे प्यार करता हूँ। रीतिका सिर्फ मेरी मित्र है। मत करो मेरी और इस घर की शांति भंग। कुछ हासिल नहीं होगा इससे।

''तुम तोड़ क्यों नहीं देते अपनी इस मित्रता को... इस घर की और मेरी मानसिक शांति बनाए रखने के लिए। क्या तुम्हारी मित्रता मेरे प्यार और इस घर से ऊपर है...?

''क्यों, पर क्यों...? क्या तुमने अपने प्रति मेरे प्यार में कोई कमी देखी है...?इस घर के प्रति, बच्चों के प्रति मेरे व्यवहार और समर्पण में कोई कमी देखी है...? क्या मेरा तुम लोगों पर इतना भी हक नहीं कि अपनी एक छोटी–सी खुशी तुमसे मांग सकूं...''अनिकेत तैष में आ गया– ''अब तुम ये डिसाइड करोगी कि मुझे किससे मित्रता रखनी है और किससे तोड़ देनी है... और वो भी बिना किसी कारण के?''

अनिकेत मैं बड़ी ईमानदारी से पूछ रही हूं कि अपनी व्यक्तिगत खुशी के लिए तुम भी मुझे मेरी व्यक्तिगत खुशी दे सकते हो..? सच कहती हूं बहुत प्यार करती हुँ तुमसे। मेरे जीवन में तुम्हारी जगह कोई नहीं ले सकता। मैं किसी पुरूष से मित्रता करने की भी नहीं कहूँगी क्योंकि मित्रता में भी हम एक–दूसरे से प्रेम ही कर रहे होते हैं। मैं सिर्फ इतनी अनुमति चाहती हूँ तुमसे कि इस 'ट्रोमा' से निकलने के लिए कुछ दिनों के लिए मैं किसी अज्ञात स्थान पर, एक अज्ञात नाम से रहना चाहती हूँ। आजमाना चाहती हूँ खुद को... तुम्हारे प्रति अपने प्यार को। अगर मुझे लगा कि लौटना चाहिए इस घर में तो लौट आऊंगी। यदि लगा कि नहीं, अभी मेरे अंदर का आक्रोश शांत नहीं हुआ है तो लौट तो आऊँगी पर तुम्हारे साथ नहीं रहूँगी... ।''

तुम्हें पता है माही कि क्या कह रही हो तुम..?''

''हां, बहुत सोच समझकर कह रही हूँ और इसका परिणाम भी जानती हूँ। मैं जिस भंवर में फंसी हूँ ना अनिकेत... उसकी नियति सिर्फ डूबना है और में डूबना नहीं चाहती । इस पार या उस पार। बहुत प्यार करती हूं तुम्हें ,अनु। जिस तरह तुम रोज टुकड़ों–टुकड़ों में मेरे और रीतिका के बीच बंटते हो, वो मैं देख नहीं पाती। मैं सिर्फ इतना ही तो जानना चाहती हूँ कि तुम रीतिका से प्यार करते हो या नहीं?। ये प्रश्न मुझे चैन से जीने नहीं देता। तुम्हारे संबंधों का रहस्य मुझे दिन–रात पागल किए दे रहा है। एक–एक तिनका जोड़कर मैंने अपने प्यार का आशियाना बनाया है और इस आशियानें में सिर्फ हमारे प्रेम और विश्वास का गारा लगा है। इस गारे में अगर किसी और की मित्रता की भी मिलावट अब हो गई है जैसा कि तुम कह रहे हो तो मेरे प्यार का ये आशियाना ताश के पत्तों की तरह भरभराकर ढह जाएगा। मैं इसे गिरते हुए नहीं देख पाऊंगी, अनिकेत। पता चल जाएगा तो कम से कम अपने आशियाने की मरम्मत तो कर लूंगी।कैसे करूँगी वो मैं नही जानती अभी। पर पता तो चले तुम्हारा वो प्यार और विश्वास अभी मेरे प्रति है या नहीं...?

''पागल मत बनो ,माही। मैं अब भी तुम्हारा वही अनिकेत हूँ। तुम्हें प्यार करने वाला। इस घर के लिए पूरी तरह समर्पित।''

'' यही तो जानना चाहती हूँ अनिकेत कि ये प्रेम और समर्पण वही है या उसका दिखावा..? बस इतना ही तो चाहती हूँ कि तुम रीतिका से अपने सारे संबंध खत्म कर लो। मैं इस बहस में पड़ना ही नहीं चाहती कि वो प्रेम है या मित्रता।''

तुम जानती हो माही कि मैं ना तो झूठ बोलता हूँ और ना ही अपनी सच्ची मित्रता का अपमान करूँगा। कैसे कहूँगा रीतिका से कि मैं उससे कोई संबंध रखना नहीं चाहता ।क्या जबाब दूंगा उसे जब वो इसका कारण पूछेगी...? क्या ये कहूं कि मेरी पत्नी हमारे सम्बंधों पर शक करती है... इसलिए । शक तो उसका पति भी करता होगा पर उसने तो कभी नहीं कहा... एक लड़की होकर भी। मुझसे मिलकर उसके चेहरे पर जो खुशी आती है, जो सुख वो मुझसे बातें करके पाती है, क्या कहूँ उसे कि तुम्हें कोई हक नहीं है खुश होने का क्योंकि मेरी पत्नी ऐसा चाहती है और फिर उसकी ही खुशी क्यों, मुझे भी तो उससे बातें करना अच्छा लगता है। उसकी निर्मल हंसी, उसकी छेड़खानी, उसका बचपना... मेरे अंदर भी तो ढेरों रंग घोल जाते हैं। उसकी बातें मुझे अवसाद से निकलने में मदद करती है। उससे मिलने के बाद किश्त–दर–किश्त इतना परिवर्तन आया है मुझ में मेरे व्यक्तित्व में। पांच वर्ष की एक छोटी–सी सुंदर गुडिया की तरह लगती है वो मुझे। उसे देखकर कभी मेरे मन में दूषित भावना नहीं आती सिर्फ बच्चों की तरह प्यार आता है उस पर । स्त्री–पुरूष के बीच प्रेमका आधार सिर्फ शारीरिक सम्बन्ध ही नहीं होते, एक अलग–सा रूहानी रिश्ता भी हो सकता है। बस वही है हमारे बीच... और इसमें मुझे व्यक्तिगत खुशी मिलती है। क्या मेरी इस व्यक्तिगत खुशी के लिए तुम मुझे इतनी भी इजाजत नहीं दे सकती कि मैं चंद पलों के लिए उससे सिर्फ बात कर सकूं। ''

''मुझे तुम्हारी तरह शब्दों को बुन उनके अर्थ बदलना नहीं आता क्योंकि मेरे लिए तो प्रेम एक सीधी–सच्ची भावना है। इसमें कोई दांव–पेंच नही होते। ना ही होती है कोई शर्त।इतनी ताकत होती है प्रेम में। मुझे अब तुम्हारे अंदर वो चीज महसूस क्यों नहीं होती?क्यों तड़प रही हूँ मैं सच जानने के लिए। इसीलिए कहती हूँ सिर्फ एक बार सच बोल दो अनिकेत, सिर्फ एक बार। अगर नहीं है तुममें वो हिम्मत तो इतनी बोलते–बोलते माही का गला खुष्क होने लगा और उसे खांसी का दौरा पड़ गया। आंखों से पानी बहना शुरू हुआ तो बहता ही रहा जिसमें कुछ घुलता रहा। खाना खाने के बाद बेडरूम में शुरू हुई बहस आधी रात तक चलती रही।

सुबह जब वह सोकर उठी तो उसने देखा कि

अनिकेत रसोई में नास्ता और कॉफी बना रहा है प्रेम की सुगंध से उसका तन–मन महक उठा क्योंकि अनिकेत कभी रसोई में उसकी मदद नहीं करते थे।

''हटो मैं बनाती हूँ... । वह पास आकर खड़ी हो गई।

''अनिकेत ने उसे दोनो कंधों से थाम लिया–'' तुम अपना बैग पैक कर लो। फ्रिज के ऊपर पचास हजार कैश और ए.टी.एम. कार्ड पड़ा है। जहां भी जाओ मुझ से फोन द्वारा सम्पर्क में रहना। किसी मुसीबत में हो तो बता देना, मैं तुरंत पहुंच जाऊंगा। जाओ जी लो अपनी जिन्दगी। मैं तुम्हारी व्यक्तिगत खुशी में आड़े नहीं आऊंगा।''

प्रेम की जिस सुगन्ध से अभी थोड़ी देर पहले उसका तन–मन महक उठा था उसे लगा कि वह सिर्फ हवा का एक झोंका था जो गुजर गया। अनिकेत के मुंह से निकले शब्दों की दुर्गन्ध से उसका जी मिचलाने लगा और उसे उल्टी–सी होने को आई। निढाल सी होकर वह फर्श पर बैठ गई।

कुछ देर तक वह यूं ही बैठी रही ...निश्चल , निष्प्राण। फिर उठी और दोबारा विस्तर में घुस गई। जिस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए वह महीनों से जूझ रही थी वह उसे आज मिल गया था... और अब उसे कहीं नहीं जाना था।

'' लो, नाश्ता कर लो... ।'' अनिकेत ने उसके बालों को बड़े प्यार से सहलाया । वह समझ गई कि ये जो अतिरक्त प्यार उमड़ रहा है वो क्यों दर्शाया जा रहा है। डबडबाई आंखों से उसने पति का चेहरा देखा– ''क्यों अनिकेत?... क्यों? क्या कमी थी मेरे प्यार में...?क्यों किया तुमने ऐसा...? भटक रहे हो तुम .... और इस भटकाव का कोई अंत नहीं है।'' रूलाई का एक गोला उसके पेट से उठकर गलें में फंस गया । बड़ी मुश्किल से आवाज निकली–'' कहां जाऊगी मैं तुम्हें , बच्चों को और इस घर को छोड़कर... । क्या जी सकुंगी तुम्हारे और बच्चों के बिना.. .? तुम और बच्चे जब घर में नहीं होते तो घर मुझे खाने को दौड़ता है। तुम सोच भी कैसे सकते हो कि इस घर के बिना मैं जिन्दा रह पाउंगी। क्या मेरे प्रति यही प्यार है, तुम्हारा? उस लड़की के साथ कुछ पल बिताने की कीमत पर तुमने मुझे कह दिया कि जाओं, जहां जाना है। पिछले बीस वर्षें में एक बार भी तुमने मुझे अकेले मेरे मायके तक नहीं भेजा। हमेशा साथ गए मेरे ... एक सुरक्षा कवच की तरह । आज तुम्हें क्यों डर नहीं लग रहा अपनी माही के साथ किसी अनहोनी का?'' वह फफक –फफक कर रो दी–'' अनिकेत, तुम वो अनिकेत नहीं हो जिससे मैंने प्यार किया था। जिसके सिर्फ एक बार कह देने पर मांग में सिन्दूर भर अपने मां–बाप और भाई–बहनों को बिना बताए शादी कर ली थी। पिछले बीस बरसों में एक बार भी मुझे इस निर्णय पर पश्चाताप नहीं हुआ बल्कि गर्व ही हुआ था कि तुम मेरे पति हो। सिर्फ तुमसे ही नहीं, तुम्हारी हर बात से , हर चीज से मुझे प्यार था...''

'' फिर अब क्या हुआ....?

''अब तुम्हारी इस बात से तो मैं प्यार नहीं कर सकती ना! तुम्हें सिर्फ प्यार ही नहीं करती मैं.... तुम्हारे साथ रहने की आदत पड़ गई है मुझे। एक लत... एडिक्शन...''

''माही... माही चुप हो जाओ। चुप हो जाओ प्लीज। यह प्रस्ताव भी तुम्हारा ही था ना! पूरी रात बस तुम्हारे इसी निर्णय के बारे में सोचता रहा। पति–पत्नी के बीच में विश्वास का होना बहुत जरूरी है। अगर विश्वास नहीं हो पा रहा है तो बाकी सब बातों का क्या फायदा.... ।''

'' ये विश्वास तुमने ही तोड़ा है अनिकेत, ना कि मैंने... । तुम मना भी तो कर सकते थे मुझे। जाने से रोक भी तो सकते थे। पर तभी रोकते ना जब मुझसे प्यार करते होते। विश्वास केवल पत्नी की ओर से ही नहीं होता, पति भी उसी डोर में बंधा होता है... ।'' वह फिर सिसकने लगी– '' कितनी असानी से कह दिया तुमने कि फ्रिज पर पचास हजार रूपये और ए.टी. एम. कार्ड रखा है... उठाओ और निकल जाओ मेरी जिन्दगी से। बहुत विश्वास था मुझे तुम पर ... इस बात पर कि तुम रह ही नहीं पाओंगे मेरे बिना... ।''

'' सच कहा तुमने... पर विश्वास तोड़ने की पहल तुमने की है ना कि मैंनें..... । तुम्हीं ने कहा कि मैं जाना चाहती हूँ अपनी खुशी के लिए। जाओ माही नहीं रोकूंगा मैं तुम्हें। जी लो अपनी जिन्दगी ।''

''ताकि तुम अपनी जिन्दगी जी सको....है ना।'' माही का अहम् टुकड़े–टुकड़े होकर विखर गया।

'' बात को जितना खीचोगे बढेगी। घर छोडकर जीने की मैंनेकहा क्या कभी .... तुम्ही ने कहा?''

''मैंने...? वैरी गुड... अभी भी तुम मुझे ही दोषी ठहरा रहे हो... । रीतिका तुम्हारी जिन्दगी में है ना कि कोई पुरूष मेरी जिन्दगी में... ।''

''इससे ये सिद्ध नहीं होता कि मैं गलत हूँ... सच तो बात ये है कि जब तुमने मुझ पर शक किया था तभी उस विश्वास को ठेस पहुचा दी थी।''

देखकर मुझे ये होता है... वो होता है... वो एसी है.... वैसी है। उससे बातें करके मैं अपने सारे गम भूल जाता हूं आखिर क्या गम है तुम्हें जो तब नहीं था जब रीतिका तुम्हारी जिन्दगी में नहीं आई थी।'' ''ये सारी बातें तुम्हारे अविश्वास और शक की ही उपज है। मैंने कभी उसके बारे में उस तरह से नहीं सोचा जैसा तुम सोचती हो। रीतिका बस एक अच्छी लड़की है इससे ज्यादा और कुछ नहीं''

''दुनिया में और भी बहुत सारे लोग अच्छे हैं। किस–किस पर लुटाओंगे अपनी मित्रता... प्रेम...? और वो भी घर की कीमत पर। अब तो झूठ मत बोलो, अनिकेत... ।'' अनिकेत को कंधों से पकड़कर उसने झिंझोड दिया तो हाथ में पकड़े काफी के मग से गरम गरम कॉफी अनिकेत के हाथ पर छलक गई। वह पीड़ा से चीख उठा।

'' सॉरी... सॉरी अनिकेत....'' अनिककेत की पीड़ा से एकबारकी वह सहम गई। विस्तर से निकल फ्रिज से बर्फ लाने के लिए भागी पर ठिठक गई। फ्रिज पर दोनों की एक फोटो रखी हुई थी। साथ ही कागज का एक टुकड़ा भी था जिस पर लिखा था– ' आई लब यू माही... तुम कहीं नहीं जाओगी। ' प्रेम की सुगंध से सराबोर होकर एक पल के लिए हतप्रभ रह गई वह। उसने पलटकर देखा तो अनिकेत था। बड़े प्यार से उसके दोनों कंधे थामकर बोला–मैं चाहे जैसा भी होउं माही तुम मुझसे दूर जा ही नहीं सकती। रह ही नहीं पाओंगी मेरे बिना। तुम्हारे इसी प्रेम पर मुझे पूरा विश्वास था। आई लव यू माही...

कहानी को एक सुखांत मोड़ देकर मैंने संतोष की गहरी सांस ली और पेन कागज पर यूं ही खुला छोड़ दिया। एक अच्छी कहानी... एक ऐसी कहानी हो जो पति–पत्नी के पावन प्रेममय रिश्तों पर हो तो उसका अंत तो सुखांत ही होना चाहिए ना? पर मेरे इस पेन को क्या हुआ...? आंसू के शक्ल में एक बूंद स्याही खुले फाउंटेन पेन की निब से निकलकर कागज पर क्यों फैल गई? मैंने अपनी आंखों को उंगलियों से टटोला कि कहीं आंखों से तो नहीं गिरा ये अश्रुजल...?हां आज भी आंखों में आंसू ही है पर वे कागज पर नहीं गिरे हैं। कहानियों का अंत लिखते समय वैसे भी मैं भावुक होकर रो पड़ती हूँ। इसमें कोई विशेष बात नहीं है। विशेष बात तो ये है कि इस निर्जीव पेन को भला क्या आपत्ति है कहानी के सुखांत से?अब इसे क्या पता कि अगर मैं लिख देती कि फ्रिज पर पचास हजार रूपये और ए.टी.एम. कार्ड ही था या लिख देती कि पिछले दो वर्षो से मैं नितांत अकेली इस शहर में हूं और अनिकेत ने एक बार भी मेरे बारे में जानने की कोशिश नहीं की तो फाउंटेनपेन का ढक्कन कसकर बंद कर मैंने अपनी आंखें भी पोंछ ली।

शहीद का गर्म लहू

शहीद का रक्त –बीज
पत्थर पर भी उग सकता है
शहीदों का बलिदान
आजाद गुलामी
नादिर शाही
अस्मतों की लूट
फासिष्टों के गर्भ –पाती इरादे
देश–द्रोहियों
के बुने अंधेरों में
स्वर्ण–रेख
तपस्वी की तपस्या
खून से जलाये दीये की रौशनी
देखा तेवर
शहीदों के गर्म लहू का
कब्र से उबाल खा गया
भारत की मिट्टी
सोंधी –सोंधी महक उठी
सुना शहादत का जय घोष
शहीदों के लहू का व्यापार करने वालों के
कान बहरे हो गये
आँखे चुँधिया गई
शर्म के मारे नाक पर पसीना आ गया
अब दाल नहीं गलेगी
किसी सीता का हरण नहीं होगा
धरती के कठोर वक्ष –स्थल पर
शहीदों के गर्म लहू से
लक्ष्मण– रेखा खिंची है
इसे लांघने वाले कुत्तों
जल जाओगे
नस्ते–नाबूद हो जाओगे
यह शहीद का गर्म लहू है।

नसीम साकेति,
कल्याणपुर , लखनऊ
मो0 9415458582

कविता

जीवन का शैतान

मेरे जीवन का शैतान है वह
दुनिया में बदनाम है वह
कहते सब बेइमान है वह
कम नहीं हैवान है वह

अमिरों का अरमान है वह
गरिबों का श्मशान है वह
मैं जिसके संग रहता हूँ
जिन्दा रहकर सहता हूँ
भूख, गरीबी, बीमारी का
भीखमंगों की लम्बी कतार है वह
कह तो दिया डायन सबने
महैंगाई की मार है वह

उसका सीना तान खड़ा है
तेरा झुठा अभिमान है वह।

राघवेन्द्र प्रसाद सहाय
बड़ी खंजरपुर
भागलपुर
9939856660

ज्ञान की ज्योति जलाना

कांटों से भरा है राह राही
संभल–संभल कर चलना
पग–पग में है सतरंगी जाल
बिछाये बैठी छलना
अगर पाना है लक्ष्य तो
आगे ही बढ़ते जाना
राह कठिन जरूर है
इससे न घबराना
चाल तेरी मंद न हो
काली रात से न डरना
प्रभात जरूर होगा राही
अंधियारे से लड़ते रहना
उदास होकर के तू अपना
गाण्डीव न रख देना
कौरव के छल मे आकर
समझौता न कर लेना
आलस, अत्याचार, अहं के
जाल में न फंस जाना
कर्मठता, उत्साह, शांति से
ज्ञान की ज्योति जलाना
प्यास बुझा दो जन–जन की
बनकर निर्झर झरना
रहम करे सभी पर
दुखियों का घाव तु भरना

महेन्द्र देवांगन ''माटी''
गोपीबंद परा पंडरिया
कवर्धा (छत्तीसगढ़)
09993243141

कविता

चमकीला पहिया

अभिलेख
गोमतीनगर, लखनऊ,
उत्तर प्रदेश

गोल सा, चाँद सा, चांदी की चमक सा
ये पैसा हर रूप में रहता अड़ा सा...
कभी चुप रहकर भी कई बात कह देता ये सिक्का
जो खनक जाये तो पोल खोल देता ये कीमती पहिया...
निर्जीव होकर भी आज कुछ लोगों के प्राण बन गया
भगवान को रिश्वत देने का नया साधन बन गया...
नियत भी खोटी हो जाती है इसे देखे के
रिश्ते भी छोटे नज़र आते इसके आगे...
कभी लुढ़कता तो कभी उछलता रहता
बाज़ार को बंदर की नाच नचाता रहता...
कभी खुले आम तो कभी चोरी से
दुनिया का हर सफ़र करता बड़े आराम से...
किसी की ज़रूरत तो किसी के लिए अपराध बना
अपनी चमक से आज की दुनिया का जंजाल बना...
अहिंसा परम–ओ–धर्म कहने वाले को
लोगों ने अहिंसा की जड़ पे छाप दिया...
हस्ताक्षर करके अदा करने वाले हाथों से लेकर
आज हर हथेली ने इसको अपना सर्वस्व मान लिया...
इसी की भूख है इसी की प्यास है
मरने के बाद भी लाद के ले जाए ये ही सबकी आस है...
ज़रूरत को पूरा करने वाला ये साधन
आज खुद की ज़िन्दगी से ज्यादा ज़रूरी हो गया... !!

बेटियाँ

संयुक्ता गुप्ता,
भागलपुर

बेटियाँ रिश्तों–सी पाक होती हैं
जो बुनती हैं एक शाल
अपने सम्बन्धों के धागों से
बेटियाँ धान सी होती हैं
पक जाने पर जिन्हें
कट जाना होता है
जड़ से अपनी
फिर रोप दिया जाता है जिन्हें
नई जमीन में
बेटियाँ मंदिर की घंटियाँ होती हैं
जो बजा करती हैं कभी पीहर
तो कभी नैहर में
बेटियाँ पतगें होती हैं
जो कट जाया करती हैं
अपनी ही डोर से
और हो जाती हैं परायी
बेटियाँ गूंथ दी जाती हैं आटे–सी
बन जाने रिश्तों की रोटियाँ
देने एक बीज को जन्म
बेटियाँ चकरी–सी होती हैं
जो घूमती हैं अपनी ही परिधि में
चक्र–दर–चक्र चलती हैं अनवरत
बिना तेल की चिकनाई लिए
मकड़जाल–सा बना लेती हैं
अपने इर्द–गिर्द एक घेरा
जिसमें फंस जाती हैं वे स्वयं ही
बेटियाँ मौसम की पर्यायवाची हैं
कभी सावन तो कभी भादो
हो जाती हैं कभी पतझड़–सी
बेजान और ठंड–सी शुष्क
बेटियाँ दीये की लौ–सी होती हैं
सुर्ख लाल जो बुझ जाने पर दे जाती है
चारों ओर स्याह अंधेरा
और एक मौन आवाज ।

संस्मरण

देवघर की स्मृतियां

शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

डॉक्टरों के आदेशानुसार वायु–परिवर्तन के लिए देवघर जाना पड़ा। चलते समय कवि गुरू की एक कविता बार–बार याद आने लगी–

औषुधे डॉक्टरे
व्याधिर चेये आधि हल बड़
करले जखन अस्थी जर जर
तखन बलले हावा बदल करो।

हवा बदलने से क्या लाभ होता है, यह सभी जानते हैं, फिर भी लोग जाते ही हैं और मुझे भी जाना पड़ा। मैं चाहारदीवारियों से घिरे हुए एक मकान में रहता हूँ। पास के किसी मकान से एक महाशय रात के तीन बजे से फटे बांस की आवाज की तरह बेसुरे राग से भजन गाना शुरू कर देते हैं, नींद उचट जाती है और खीझकर बाहर बरामदे में आकर बैठ जाता हूँ। धीरे–धीरे भोर हो जाती है। पक्षियों का कलरव शुरू हो जाता है। सबसे पहले कोयल पक्षी की आवाज सुनाई पड़ती है। सुबह होने के पहले ही सब शोर मचाने लगते हैं और फिर धीरे–धीरे बुलबुल, श्यामा, गौरैया और कोयल आदि भी जंगल के आम पेड़ों , मेरे मकान के नींबू के वृक्ष, सड़क पर स्थित पीपल के पेड़ पर शोर मचाने लगतीं। यद्यपि किसी को देख नहीं पाता था, फिर भी लगता जैसे इन सबको पहचानता हूँ। पीले रंग के दो पक्षी नित्य देर से आते थे और दीवार के पास वाले चीड़ वृक्ष की सबसे ऊंची डाल पर आकर हाजिरी दे जाते थे। अचानक दो दिन वे दोनों पक्षी नहीं आये । मन में यह शंका उत्पन्न हुई कि कहीं किसी ने उन दोनों को पकड़ तो नहीं लिया। इधर व्याधा भी काफी हैं, पक्षियों का ही रोजगार करते हैं, लेकिन तीसरे दिन उन्हें यथास्थान देखकर संतोष हो गया। इस तरह सुबह समाप्त हो जाती है। शाम के समय गेट के बाहर सड़क के एक ओर आकर बैठ जाता हूँ। टहलने की शक्ति मुझ में नहीं है। इसलिए जो लोग टहलते रहते हैं उनकी ओर हसरत भरी निगाहों से देखता रहता हूँ। टहलने वालों में अधिकतर मध्यम वर्ग के पुरूष और नारी ही थे। उनमें कुछ के पैर फूले रहते थे, जिसे देखते ही समझा जाता था कि बेरी–बेरी के रोगी हैं। अपनी इस कमजोरी को छिपाने के लिए उन्हें कष्ट सहना पड़ता है। जबकि सर्दी का मौसम नहीं है, फिर भी अपने फूले हुए पांव को ढकने के लिए ये मौजा पहनते हैं, किसी की धोती जमीन लथेड़ती, इससे उन्हें चलने में कष्ट हो रहा है, फिर भी लोगों की नजरों से वे अपने आपको बचाना चाहते हैं। मुझे सबसे अधिक दुःख होता था – एक दरिद्र लड़की को देखकर। रोग–मुक्त होकर भी पैदल चलकर पुनः खोई हुई शक्ति को प्राप्त कर लेगी और तब पति–पुत्र वाली गृहस्थी में जाकर अपने नारी जीवन को सार्थक करेगी। मैं अपनी जगह पर बैठा यही सब सोचा करता था एक बंगाली लड़की इससे अधिक क्या कामना कर सकती है। मैं मन–ही–मन आशीर्वाद देते हुए कामना करता कि वह स्वस्थ होकर अपने घर वापस चली जाए। जिन तीन लड़कों ने उसकी जीवन शक्ति का शोषण कर लिया है, उन्हें जीवित रखने के लिए उसमें आत्मबल और शक्ति पैदा हो जाए। यह किसकी लड़की है, किसकी बहू है, यह मैं नहीं जानता, लेकिन यह लड़की हमारे देश की उन असंख्य लड़कियों का प्रतीक बनकर मेरे मन में जो एक लकीर खींच गई, वह कभी मिट न सकेगी।

मेरे साथ एक जवान मित्र निःस्वार्थ–सेवा करने के लिए आए हुए थे । कलकत्ता में बीमारी के समय जैसा देखा था, ठीक वैसा ही यहां भी पाया। अक्सर वह कह उठता –' चलिए भाई साहब, कहीं टहल आया जाए।' मैं कहता– 'आपसे अधिक उम्र के व्यक्ति चहलकदमी कर रहे हैं। अगर आप टहलेंगे नहीं, तो भूख कम लगेगी।'

मैं कहता–'पर बेकार घूमना मुझे पसंद नहीं भाई।'

वे नाराज होकर अकेले ही चले जाते, लेकिन जाते समय मुझे सावधान कर दिया करते– 'अंधियारा होने के पहले वापस आ जाईयेगा। नौकरों से लालटेन मंगवा लीजिएगा। इधर 'करइत सांप' अधिक हैं। कहीं बदन पर पैर पड़ गया तो खैर नहीं।'

उस दिन मित्र साहब कहीं गए हुए थे। शाम का समय था। कुछ लोग, भोजन का समय हो गया है, समझकर तेजी से अपने घर की ओर जा रहे थे, संभवतः ये सभी लोग व्याधि से घिरे हैं और शाम होने के पहले ही अपने दड़बे में प्रवेश कर जाते हैं। उन लोगों के चलने की गति देखकर मुझे भी जोश आ गया। सोचा–' चलूं कुछ दूर

टहल आऊं। उस दिन काफी देर तक टहलता रहा। अंधकार समीप होने के कारण घर की ओर ज्यों ही रवाना हुआ तो देखा पीछे–पीछे एक कुत्ता भी चला आ रहा है।'

मैंने उससे कहा –'' क्या है रे ? मेरे साथ चलेगा? अंधियारे रास्ते का तू ही साथी बन जा।'' वह दूर खड़ा अपनी पूंछ हिलाता रहा। मैं समझ गया, उसे मेरा प्रस्ताव स्वीकार है। फिर मैंने कहा– ''अच्छा, आ मेरे साथ ।''

कुछ दूर आगे बढ़कर प्रकाश के सामने देखा वह दुबला–पतला वृद्ध सा है, बदन पर अधिकांश जगहों पर बाल नहीं है, कुछ लंगड़ाकर चल रहा था। अपनी जवानी के समय शक्तिवान रहा होगा, इसमें संदेह नहीं। उसी कुत्ते से बात–चीत करता हुआ मैं घर के सामने आ गया।

दरवाजा खोलकर मैंने कहा–''आओ, भीतर आओ, आज तुम मेरे अतिथि हो।''

वह बाहर खड़ा पूंछ हिलाता रहा। भीतर आने का साहस नहीं हुआ। तभी नौकर लालटेन लेकर आया। दरवाजा बंद करते देख मैंने कहा–''आज दरवाजा बंद करने की जरूरत नहीं है। अगर वह कुत्ता आए तो उसे कुछ खाने को दे देना।'' एक घंटे बाद जब पता लगाया तो मालूम हुआ कि कुत्ता भीतर नहीं आया, न जाने कहां चला गया।

दूसरे दिन सवेरे बाहर आकर देखा, दरवाजे के पास ही अतिथि महोदय खड़े हैं। प्रत्युत्तर में मेरी ओर देखते हुए पूंछ हिलाने लगे। मैंने कहा– ''आज अवश्य भोजन करना। बिना खाए मत जाना। समझे?'' इस प्रश्न के उत्तर में वह बराबर पूंछ हिलाने लगा। मैं समझ गया वह राजी है।

रात के समय नौकर ने आकर सूचना दी कि कल वाला कुत्ता बाहर बरामदे में आकर बैठा है। रसोईये को बुलाकर मैंने कहा–''आज वह मेरा अतिथि है, उसे भरपेट भोजन दिया जाए।''

दूसरे दिन पता चला कि अतिथि महोदय मौजूद हैं। आतिथ्य की मर्यादालंघन कर आराम से बरामदे में पड़े हैं। फिर भी मैंने कहा–''खैर रहने दो। उसे भरपेट भोजन अवश्य दिया जाए।''

मुझे यह ज्ञात था कि नित्य काफी भोजन फेंक दिया जाता है। इससे किसी को आपत्ति नहीं होगी, लेकिन आपत्ति थी और वह भी भयंकर आपत्ति। हम लोगों के बढ़े भोजन की हकदार थी बगीचे की मालिन।

मुझे यह बात नहीं मालूम थी। मालिन देखने में जवान है, खूबसूरत है और भोजन के संबंध में संत है। नौकरों का झुकाव उस पर अधिक है। फलस्वरूप मेरा अतिथि उपवास करता है। शाम के समय जब टहलने निकलता हूँ तो नित्य उसे सड़क पर पहले से ही स्वागत में खड़ा देखता हूँ। चलते–चलते पूछता–''क्यो भाई ,आज गोश्त कैसा बना था? । उसकी हड्डियों में तुम्हें स्वाद मिला था या नहीं? । उत्तर में उसे पूंछ हिलाते देख मैं समझ गया , गोश्त उसे पसंद आया था। मुझे यह नही मालूम था कि मालिन ने उसे बगीचे से खदेड़ दिया है। अब बाग में घुसने नहीं देती। फलस्वरूप बेचारा सड़क पर मेरी प्रतीक्षा में खड़ा रहता है। इस कार्य में मेरे नौकरों का भी हाथ था।

अचानक दरवाजे पर छाया देखकर मैं चौंक उठा । देखा–मेरे अतिथि महोदय सामने खड़े होकर पूंछ हिला रहे हैं। दोपहर होने के कारण सभी नौकर सो गए हैं इसलिए हजरत चुपचाप कैसे ऊपर तक चले आए हैं। सोचा, शायद दो दिन से दिखाई न पड़ने के कारण मुझे देखने के लिए चला आया है। कहा–''आओ दोस्त, चले आओ।''लेकिन वह आगे नहीं आया। पूछा– 'खा–पी चुके ? क्या–क्या खाया?'' अचानक उसकी आंखों की छोर पर पानी दिखाई पड़ा। लगा जैसे वह मेरे पास फरियाद लेकर आया है। चिढ़कर मैंने नौकर को आवाज दी। दरवाजा खुलने की आवाज से मेरा मित्र भाग गया। नौकर के आने पर पूछा – '' आज कुत्ते को खिलाया गया था?''

'' जी नहीं, मालिन ने उसे भगा दिया।''

''खाना जो बचा था, उसका क्या हुआ?

''मालिन सब उठा ले गई है।''

चिल्लाहट सुनकर मेरे मित्र महोदय आंखे मींचते हुए ऊपर आए। कहा–भाई साहब आप भी अजीब तमाशा करते हैं। इंसान को तो भरपेट भोजन नहीं मिल रहा है और आप कुत्ते के लिए परेशान हो रहे हैं।

मित्र महोदय जानते हैं कि इस अकाट्य युक्ति का कोई जबाब नहीं है। मैं चुप रह गया। किसकी फरियाद किसके द्वारा वहां पहुंचती है, उन्हें कैसे समझाऊ? समझाना मेरे बूते का कार्य नहीं है। खैर, जो भी हो , मेरे अतिथि को बुलाया गया है और उसे बरामदे के कोने में जगह दे दी गई। आज सुबह से सामान वगैरह बांधा जा रहा था। दोपहर को गाड़ी जाती है। गेट के सामने बैलगाड़ी आई, उस पर सभी सामान लाद दिया गया । मेरे अतिथि महोदय आज बहुत व्यस्त रहे। कुलियो के साथ दौड़–दौड़ कर खबरदारी कर रहे थे कि वहां कोई समान छूट न जाए। उसका उत्साह सबसे अधिक था।

टिकट खरीद लिया। माल–असबाब गाड़ी पर चढ़ा

दिया गया। तभी मेरे मित्र ने अकार सूचना दी कि गाड़ी छूटने वाली है। जो लोग मुझे पहुंचाने आए थे , सभी को इनाम दिया गया , सिर्फ मेरे अतिथि को नहीं दिया गया । गर्म हवा के झोंके से आंखों में अंधेरा छा गया। उस अंधकार में मैंने देखा स्टेशन के बाहर फाटक के पास अतिथि महोदय खड़े एकटक देख रहे हैं। गाड़ी चल पड़ी। वापस लौटने के लिए मेरा मन व्याकुल नहीं था। सिर्फ रह–रहकर यही याद आ रही थी कि आज मेरा अतिथि जब वापस जाएगा तो देखेगा कि लोहे के फाटक वाला दरवाजा बन्द है। अब उसके भीतर प्रवेश करना मुश्किल है। दो दिन तक इधर–उधर टहलता रहेगा। शायद सुनसान दोपहर में दीवार फांदकर भीतर आकर मेरी तलाश करे। फिर जहां से आया था वहीं वापस चला जाएगा।

शायद उससे तुच्छ जीव शहर में और कोई नहीं है। फिर भी देवघर की स्मृति में उसे स्मरणीय बनाने की इच्छा से यह कहानी लिख दी।

जियो शान से

जियो शान से मरो शान से
कभी न झुको कभी न रूको
आजाद देश के वासी हो
खुली हवा में सांस लो
स्वच्छ पानी पियो
सुंदर जलवायु का मज़ा लो
घूमो देश में सब जगह
पहाड़ों पर समुंदर में या किनारे
हरे भरे जंगलों में विचरण करो

पर याद रखो कोई चीज
फ़ोकट में नहीं मिलती
इसके लिये लड़ना होगा
उनसे जो देश की
बदहाली के लिए
हैं दोषी फिर वो चाहे
नेता हों ठेकेदार हों
या माफिया या सभी
का गठबंधन या गिरोह

बिना संघर्ष कुछ नहीं मिलता
गीता में स्वयं भगवान ने सच्चाई
के लिए लड़ने का मंत्र दिया था
अतः उठो अपने हक के लिए लड़ो

मज़ा लो उन संसाधनों का
जो ईश्वर ने तुम्हें उपहार में
दिये थे अपने आशीर्वाद के साथ

जिम्मेदार बनो होशियार बनो
देशभक्त बनो ईमानदार बनो
मातृभूमि से प्यार करो
मानवता पर उपकार करो

रखो साफ़ तन और मन
अपना घर आँगन
गली उपवन
गाँव –गाँव, शहर– शहर
सफाई को अभियान बनाओ
स्वयं जुड़ो सबको जुड़ाओ
सफाई की आदत अपनाओ
न स्वयं गंदे रहेंगे
न आस पास गन्दा रहने देंगे
बीमारियों को न निकट आने देंगे
हम स्वच्छता की अलख जगायेंगे
जन जन के मन में
स्वच्छता के भाव जगायेंगे

यदि तुम अपने देश
शहर गली मोहल्ले घर
और स्वयं को
जरा भी प्यार करते हो

अखिलेश चन्द्र श्रीवास्तव
कल्याण, ठाणे
महाराष्ट्र

जिम्मेदार बनो

तो जिम्मेदार बनो होशियार बनो
देश भक्त बनो ईमानदार बनो
अवतारों के भरोसे मत रहो
अपना काम स्वयं तुम्हें ही करना है
अगर अपने देश को सदा स्वाधीन
और उन्नत भाल व मजबूत रखना है

बोलो जय हिन्द जय भारत
भारत माता की जय
इस महान देश का कोई
कुछ बिगाड़ नहीं सकता
यदि इसके बच्चे केवल
जिम्मेदार ही नही अपितु
देश भक्त ईमानदार होशियार
सदाचारी और
स्वच्छता के पुजारी और
स्वच्छ आचरण वाले हैं
भगवान करे ऐसा ही हो
हमारे नागरिक अपनी
जिम्मेदारी निभाये
और इस प्यारे देश को
धरती पर निखालिस स्वर्ग बनाये

आलेख

उच्च शिक्षा में
नैतिक मूल्यों का समावेश
आज की आवश्यकता

स्वर्णलता ठन्ना
शोध अध्येता (हिंदी)
हिंदी अध्ययनशाला उज्जैन।
रतलाम (म0प्र0)1457001

शिक्षा सामाजिक जीवन की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। वर्तमान समय में शिक्षा में कई नये प्रयोग हुए हैं और आमूल–चूल परितर्वन भी। फिर भी शिक्षा शब्द का अर्थ अपनी गरिमा के अनुरूप आज भी अपनी महत्ता को परिभाषित कर रहा है। शिक्ष् धातु से शिक्षा शब्द बना है जिसका अर्थ है विद्या ग्रहण करना। विद्या शब्द विद् धातु से बना है, जिसका अर्थ है जान पाना। अर्थात् हम उसे किसी भी रूप में क्यों न पुकारे वह अपने मूल अर्थ में ग्रहण करने अथवा शिक्षित करने के अर्थ को परिभाषित करता है। शिक्षा मुख्यतः वैदिक शब्द है हमारे प्राचीन ग्रंथों में इसका स्पष्ट अर्थ में उपयोग मिलता है। महाभारत में किरातार्जुनीय(15137) में शिक्षा का स्पष्ट अर्थ है सीखना, अध्ययन करना, ज्ञान प्राप्त करना अथवा किसी कला में निपुण होना आदि। शिक्षा शब्द का ऋग्वेद में भी प्रयोग आया है। वेदांग के अनुसार किसी विज्ञान का ज्ञान प्राप्त करना शिक्षा है। मुण्डकोपनिषद् के अनुसार शिक्षित वह है जिसमें मानवता, विनम्रता तथा प्रगल्भता हो। शिक्षित का अर्थ है क्षेत्रज्ञ, विज्ञ प्रवीण। भारत की भांति किसी भी देश या सभ्यता ने शिक्षा का इतना उच्च स्तरीय उद्देश्य नहीं रखा।शिक्षा शब्द जिस धातु से बना है उसका अर्थ ही है सीखना।

शिक्षा शब्द का मूल शिक्ष् विद्योपदेन धातु है तदनुसार 'शिक्षते उपादीयते विद्या यथा सा शिक्षा।' अर्थात् जिसके द्वारा विद्या का उपादान किया जाये वह शिक्षा है। शिक्षा से जिस विद्या की प्राप्ति की जाती है उसका स्वरूप विवेचन करते हुए विद्वानों ने कहा है।

विद्यास्ति ज्ञानविज्ञानदर्शनः संस्कृयात्मनि।

अर्थात शिक्षा का लक्ष्य विज्ञान एवं दर्शन से आत्मा में एक प्रकार का संस्कार उत्पन्न करना शिक्षा है। दूसरे शब्दों में आत्मा को सुसंस्कृत करना ही शिक्षा का मुख्य लक्ष्य है।

आर्य शिक्षा ही सभी संस्कारों में मुख्यतम है। शिक्षा रूपी संस्कार मानव के शरीर, मन,बुद्धि और आत्मा इन चारों पर्वों को निर्दोष गुणवान इतर विलक्षण विकसित,निरोग एवं पूर्ण बनता है इन चारो पर्वो की समष्टि ही मानव है। मानव का पूर्ण विकास ही तो शिक्षा का मूल उद्देश्य है। वेद की दृष्टि में विश्व का कोई भी असंस्कृत पदार्थ किसी भी कार्य के लिए उपयुक्त नहीं होता। अतः उसे कार्यान्तर उपयोग के लिए संस्कृत बनाना अनिवार्य है। कच्चा घड़ा असंस्कृत होकर जल धारण करने योग्य नहीं होता अतः उसे अग्नि में संस्कृत बनाया जाता है। ताप संस्कार से उसमें जल धारण की योग्यता आ जाती है।इसी प्रकार समुचित शिक्षा से मानव भी संस्कारवान बन चारों पर्वों में निष्णात बन जाता है और उसका नैतिक एवं अध्यात्मिक स्तर उच्चता को प्राप्त हो जाता है। यही आर्य शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है।

भारतीय शिक्षा प्रणाली के आदर्श वाक्य के रूप में वेद का अनुशासन है । विशेष ज्ञानी– ज्ञानामृत में प्रतिष्ठित व्यक्ति अज्ञानियों में बैठकर उन्हें ज्ञान प्रदान करें। अर्थात गुरू या शिक्षक अपने प्राप्त ज्ञान के माध्यम से अन्य को शिक्षित करें।

वैदिक शिक्षा प्रणाली का मानना है कि समस्त ज्ञान मनुष्य के अंतर में स्थित है। भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार आत्मा ज्ञान रूप है। ज्ञान आत्मा का प्रकाश है। मनुष्य को बाहर से ज्ञान नहीं होता प्रत्युत आत्मा के अनावरण से ही ज्ञान का प्रकटीकरण होता है। श्री अरविंद के शब्दों में 'मस्तिष्क को ऐसा कुछ नहीं सिखाया जा सकता जो जीव की आत्मा में सुप्त ज्ञान के रूप में पहले से ही गुप्त न हो'' स्वामी विवेकानन्द ने भी इसी बात को इन शब्दों में व्यक्त किया है। मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है। ज्ञान मनुष्य में स्वभाव सिद्ध है कोई भी ज्ञान बाहर से नहीं आता सब अंदर ही है हम जो कहते हैं कि मनुष्य 'जानता' है। यथार्थ में मानव शास्त्र संगत भाषा में हमें कहना चाहिए कि वह अविष्कार करता है, अनावृत ज्ञान को प्रकट करता है।

अतः समस्त ज्ञान चाहे वह भौतिक हो, नैतिक हो अथवा आध्यात्मिक मनुष्य की आत्मा में है। बहुधा वह

प्रकाशित न होकर ढ़का रहता है और जब आवरण धीरे–धीरे हट जाता है तब हम कहते हैं कि हम सीख रहे हैं जैसे –जैसे इस अनावरण की क्रिया बढ़ती जाती है हमारे ज्ञान में वृद्धि होती जाती है। इस प्रकार शिक्षा का उद्देश्य नए सिरे से कुछ निर्माण करना नहीं अपितु मनुष्य में पहले से ही सुप्त शक्तियों का अनावरण और उसका विकास करना है।

सच्चे शिक्षण का पहला सिद्धांत है कि कुछ भी सिखाया नहीं जा सकता। अध्यापक कोई निर्देशक या काम लेने वाला स्वामी नहीं है, वह एक सहायक एवं मार्ग प्रदर्शक है। उसका काम सुझाव देना है, थोपना नहीं। वह सचमुच विद्यार्थी के मानस को प्रशिक्षित नहीं करता। वह उसे केवल यह बतलाता है कि ज्ञान के उपकरणों को कैसे पूर्ण बनाया जाय और वह उसे इस कार्य में सहायता देता और प्रोत्साहित करता है। वह उसे ज्ञान नहीं देता अपितु उसे यह बताता है कि अपने लिए ज्ञान कैसे प्राप्त किया जाय।

स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा को ज्ञान का पर्याय न मानकर जीवन निर्माण, मनुष्यत्व के विकास एवं चरित्र का गठन का साधन माना है उनका दृष्टिकोण है–शिक्षा उन जानकारी के समुदाय का नाम नहीं, जो तुम्हारे मस्तिष्क में भर दिया गया हो और वहाँ पड़े–पड़े तुम्हारे सारे जीवनभर बिना पचाये सड़ रहा है। हमें तो भावों या विचारों को ऐसे आत्मसात् कर लेना चाहिए, जिससे जीवन निर्माण, मनुष्यत्व आये और चरित्र का गठन हो। यदि शिक्षा और जानकारी एक ही वस्तु होती है तो सभी शिक्षाओं का अभ्यासों का उद्देश्य मनुष्य निर्माण ही है। समस्त अभ्यासों का अंतिम ध्येय मनुष्य का विकास करना है। जिस अभ्यास के द्वारा मनुष्य की इच्छाशक्ति का प्रवाह और आविष्कार संयमित होकर फलदायी बन सके, उसी का नाम शिक्षा है। चारित्रिक शिक्षा पर बले देते हुए स्वामी विवेकानन्द ने कहा था , शिक्षा मनुष्य के भीतर निहित पूर्णता का विकास है वह शिक्षा जो जनसमुदाय को जीवन संग्राम के उपयुक्त नहीं बना सकती जो उनकी चारित्रिक शक्ति का विकाास नहीं कर सकती जो उनके मन में परहित भावना और सिंह के समान साहस पैदा नहीं कर सकती। क्या उसे भी हम शिक्षा का नाम दे सकते हैं? शिक्षा का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा था–सभी शिक्षाओं का अभ्यासों का अंतिम ध्येय मनुष्य का विकास करना है। जिस अभ्यास के द्वारा मनुष्य की इच्छा शक्ति का प्रवाह और अविष्कार संयमित हेाकर फलदायी बन सकें।

शिक्षार्थी के जीवन में उच्च शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि उच्च शिक्षा लोगों को एक अवसर प्रदान करती है जिससे वे मानवता के सामने शोचनीय रूप से उपस्थित सामाजिक, आर्थिक ,सांस्कृतिक , नैतिक और आध्यात्मिक मसलों पर सोच विचार कर सकें। अपने विशिष्ट ज्ञान और कौशल के प्रसार द्वारा उच्च शिक्षा राष्ट्रीय विकास में योगदान करती है। इस कारण हमारे अस्तित्व के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण है।

सारी शिक्षा तथा समस्त प्रशिक्षण का उद्देश्य मनुष्य का निर्माण होना चाहिए। परन्तु हम यह न करके जीवन केवल बहिरंग पर ही पानी चढ़ाने का सदा प्रयत्न किया करते हैं। वहाँ सिर्फ बहिरंग पर पानी चढ़ाने का प्रयत्न करने से क्या लाभ?सारी शिक्षा का ध्येय है, मनुष्य का विकास।

अतः गुणवत्ता प्रबंधन का संबंध व्यक्ति और संस्था में कार्य के ऐसे समुचित और निर्विकल्प सम्पादन से है जिससे उसका आन्तरिक मूल्य और सौदर्य सभी हितग्राहियाँ तक स्वतः सम्प्रेषित हो जाए।

लघुकथा

आजादी

एक अन्तर्राष्ट्रीय एयरपोर्ट पर दो उम्दा जाति के श्वान टहल रहे थे। एक श्वान भारत का था तो दूसरा चीन का । एक व्यक्ति ने भारत के श्वान से पूछा ''कहाँ जा रहे हो?''

भारतीय श्वान ने कहा–'' रोजगार के लिए दूसरा मुल्क जा रहा हूँ हिन्दुस्तान में तो भूखे मरने की नौबत है। कोई रोजगार–धंधा यहाँ है नहीं, बेरोजगारी दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। लोग भूखे मर रहे हैं दूसरा उपाय क्या है?''

कुछ पल बीता होगा कि उस व्यक्ति ने चीन देश के श्वान से पूछा ''तुम कहाँ जा रहे हो?

चीनी श्वान ने कहा– हिन्दुस्तान जा रहा हूँ हमारे देश में खाने पीने की सुख सुविधा की कमी तो नही है। लेकिन वहाँ भौंकने की आजादी नहीं हैं।

ठाकुर शंकर कुमार,
चित्रगुप्त नगर अररिया बिहार

खुदा के नाम

गिरिजा शंकर मोदी
भागलपुर
मोबाइल 9934095639

आज हम वक्त के
एक घिनौने दौर में हैं
खुदा के नाम कुछ बन्दे
बर्बरता के खौफनाक चेहरे में
इन्तिहा जुल्म की हद में
नृशंस हो
बना लेना चाहते हैं
एक आदिम कविलाई मन के
स्वैर कल्पना में
घिनौनेपन का इस्लामिक समाज
अपने रक्त रंजित नख –
दंतों के बीच

वे उखाड लेना चाहते है जड़ों से
सदियों से खड़े वट वृक्षोंको
वे चाहते हैं
डालियॉ जमीर पर हो
और जड़ें उपर

वे हो रहे हैं
खुदा के नाम
साढ़ों की सींगे
विच्छुओं की डंके
बिषधरों की फनें
आदमखोर बाघों की मंशा
व मकड़ी की जाल में
मौत का फंदा

वे फहराने में लगे हैं
वे आबरू होती औरतों की
आहों के
सिसकते आकाश में
बच्चों के खून से सने
इस्लामिक पताके

गाँव दर गाँव की
सारी की सारी जवान औरतें
उठा ले जाते हैं वे शिविरों में
भेड़िया होते मन के
सामूहिक बलात्कार के
अन्तहीन सिलसिले में
और बाद में
गुलाम बाजार के लिए

जंजीरों में बंधे रहने को
जहाँ मसले जाते हैं
उनके वजूद ही नहीं
उनकी आत्मा के बोल भी
खुदा के नाम
और तब फुर्र हो जाता है
औरत होने का अर्थ
सीमाहीन आकाश के शून्य में

इतिहास का खूंखार
नादिर शाह और चंगेज खां
और भी बर्बर हो
दहशतजदा है इनमें कि
..... इस्लाम कबूल करो
इसके कानूनों को मानो
अन्यथा.....

वस्तियाँ भांय भांय है
लाशों की ढेर है
व पलायन की त्रासदी है,

सबकुछ जीवन का
परम्परागत
समाप्त हो रहा है
नीरों की बाँसुरी की
तेज होती आवाज के
कारकों की टीसें
अस्तित्व की टीलों पर
सिर पटक
मौत की घण्टियाँ
गले में बाँध रहे हैं,

फिर कलम होते
बुद्धिजीवियों के वीडियो
मासूमों को जबरन दिखा
खौफ के बीच उन्हें
खुदा के बीच उन्हें
खुदा के नाम करने पर
जन्नत के सपने दे
वमों तबदील किये जा रहे है
मानवता स्तब्ध है

होकर सागर के विस्तार में फैली
गहराती रात
और उसके शून्य से पैदा
कोई दर्द देती आवाज
भय का दंश दे
समा देता है उसमें
एक बदसूरत आकाश
जहाँ खत्म हो जाते है
आत्मा के सारे
संवेदनात्मक उत्स
और आज अभी– अभी
दिन के उजालों में
तहरीक–ए–तालिबान के
बहशियों ने
इम्तिहान देते
पेशावर के आर्मी स्कूल के
सौ से अधिक मासूम बच्चों को
आत्मघाती धमाके बमों और
गोलियों से उड़ा दिया है

खुदा के आकाश से
रक्त के आंसू टपक पड़े हैं
दुनिया थम गई है रूदन में
मासूमों की हंसी,
उसकी मासूमियत
और चिड़िया मन
रक्त के सैलाव में समा गया है

और अब
स्कूल के श्मशानी माहौल की
प्रेत छाया में
चरम पंथियों के क्रूर
चेहरों के बीच पड़े है
सैकड़ों बच्चों की चिथड़ी लाशें
रक्त में सनी उसकी पुस्तकें,
कापियां रक्त पर तैरते
उनके टिपिन बॉक्स
टूटे बिखरे जलते फर्नीचर्स
रक्त से नहाई दिवारें
और रक्त में डूबे फर्श
यह वक्त है
खो चुके बच्चों की माँओं
के साथ
दहाड़ मार कर रोने का

यह वक्त है
माँ की आकांक्षा, सपनो
और मर्म के ताबूद पर
रोने का

यह रोने का समय है
उन बच्चों के मासूम चेहरे
भोले सपने, रंगों और
चहक की
स्मृतियों के अस्तित्वहीन
झलक की छॉव में
विलुप्त हो गई उनकी
आत्मा के
सौन्दर्य पराग पर

इन पीड़ाओं के लिए
शब्द नहीं है दुनिया के पास
यहाँ तो सिर्फ एक गम
का एहसास
और खालीपन है

ऐसे में क्या कहा जाए
उस मुल्क को
जो सौ से अधिक बच्चों को
एक साथ दफनाने जा रहा है

सोचती है दुनिया
क्या वह मुल्क कभी
अंधेरे से निकल
सुबह का उजाला
हो सकेगा
या देता रहेगा अंधेरा
ही अंधेरा
बाकी दुनिया को

आखिर इस्लाम में
कौन सा हिंसक तत्व
आ जुड़ाहै।
जो समय के चक्र से
न छिटक
मानवद्रोही फसलें
उगाने में लगा है
वक्त के सवालों के बीच
आज इस्लाम खड़ा है।

लोकवाणी

आदरणीय सम्पादक जी!
'संभाव्य '

आभारी हूँ अप्रैल का अंक हस्तगत हुआ। देखने का अवसर प्राप्त हुआ। कथा, कहानियाँ सुन्दर समीक्षा पठनीय है। कृतिकारों साधुवाद! प्रो0 मृत्युंजय उपाध्याय जी का आलेख 'सुधियों के चंदनवन में' सुखद है। सम्पादकीय किसी भी पत्रिका का प्राण तत्व है। आपने पुरोवाक् में सामयिक व्यथा को उठाते हुए टूक साफ –साफ मन्तव्य स्पष्ट किया है। जैसे प्राण ही फूँक दिये हैं। अच्छा लगा। आखिर में आपकी पूरी टीम को बधाई जिसके समवेत प्रयास से पत्रिका का स्वरूप निखर सका।

धन्यवाद!
डॉ0मंजरी पाण्डेय
केन्द्रीयवि0डी0एल0डब्ल्यू0
बाराणसी,930748808

2

श्रीमान् सम्पादक महोदय,
''संभाव्य''

पत्रिका का जनवरी एवं अप्रैल अंक मिला। समीक्षात्मक एवं शोधपरक लेख पत्रिका को अत्यन्त ज्ञानवर्धक एवं संग्रहणीय बना रहे हैं। छायावाद पर आपका एवं नई कविता पर सुनील परीट जी के लेख विशेष रूप से प्रशंसनीय हैं। कथा,काव्य एवं समीक्षा इन तीनों के संगम से पत्रिका का कलेवर परिपक्व हो रहा है भविष्य में यह और प्रभावशाली हो ऐसी कामना है। सर्वप्रथम तो पत्रिका प्रकाशित करना एवं फिर उसे निःशुल्क उपलब्ध कराना आपके साहित्य सेवा एवं समर्पण के इस भाव को कोटिशः नमन है।

शुभम श्रीवास्तव 'ओम'
मीरजापुर (उत्तरप्रदेश)
07668788189

3

माननीय प्रधान संपादक
'संभाव्य'

'संभाव्य' त्रैमासिक स्तरीय है, हो भी क्यों न!सामाजिक , साहित्यिक एवं सांस्कृतिक–गतिविधियों की चैतन्यता को जाग्रत करना जिसका लक्ष्य हो, उसमें गतिशीलता रहेंगी ही। संस्थापक सह प्रधान संपादक के विचार इसे परिपुष्ट करते नजर आते हैं।

मोनालिसा मुखर्जी की पंक्तियाँ बहुत प्रभावित करती है।

'सुधियों के चंदन वन में ' विद्वतापूर्ण आलेख है। आनंदशंकर माधवन की महत्ता को जिस सरलता व सहजता से प्रो0 मृत्युंजय उपाध्याय ने इस आलेख में परोसा है, स्तुत्य है। कविता, कवि–दृष्टि और काव्य–फलक को माधवनजी की दृष्टि से परिभाषित करना ऐसा लगा मानो कविता के चंदन वन की खुशबू मेरे अन्तर्लोक में समा गयी हो।

अनुज प्रभात के आलेख भी पठनीय हैं। काव्य स्तंभ में देवनाथ द्विवेदी तथा शुभम् श्रीवास्तव की गजलें प्रभावित करती हैं।

डॉ0 अश्विनी आभा पाण्डेय ओझा तथा इंसानजी की कविताएँ प्रभावोत्पादक हैं।

'पहली खेप' कहानी यथार्थपरक व स्तरीय है, मन को छू गयी। फरिश्ता व 'मिट्ठू पठनीय लघुकथा है किन्तु और कसावट की आवश्यकता है। कुछ गजलों , कविताओं और कहानियों के स्तर को सुधारने की आवश्यकता है। कुलमिलाकर संभाव्य की असीम संभावनाएँ बनी हुई है। मेरी अशेष शुभकामनाएँ।

11 अप्रैल 15 को रेणु–स्मृति–सम्मान समारोह 'फारविसगंज में 'संभाव्य' की एक प्रति मुझे मिली, पढकर प्रसन्नता हुई आशा है, जुलाई 15 का अंक भी नसीब हो सकेगा।

भवदीय
मांगन मिश्र ' मातृण्ड'
अररिया,बिहार 9973269906

4

आदरणीय संपादक जी

'संभाव्य' हिन्दी त्रैमासिक पत्रिका अप्रैल अंक मुझे प्राप्त हुआ। आपका हार्दिक धन्यवाद! यह पत्रिका बहुत ही स्तरीय है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ श्रेष्ठ एवं इनका सुरूचिपूर्ण संकलन किया गया है। समीक्षा, आलेख, कविता, गजल, कहानी, लघु कथा आदि कई विधाओं की रचनाओं का इस तरह से सहजता पूर्ण संकलन किया गया है। मानो कोई विभिन्न प्रकार के फूलों से सजा गुलदस्ता हो। मुझे यकीन है कि एक दिन यह पत्रिका हिन्दी साहित्य जगत को देदीप्यमान सूर्य के समान प्रकाशित करेगी ।

नीरज कुमार 'नीर' राँची , 8797777598

5

पत्रिका संभाव्य का लक्ष्य – 'सृजन और समीक्षा' 'सृजन ' मनुष्य को दिव्य गुणों से संस्कारित करता है। साहित्य को बौद्धिक ढाँचे में लेखकीय हितों के विवेक को जगाता है। सामाजिक अन्तर्द्वन्द्वों को पाठकों के द्वारा सबों के बीच रखता है।'समीक्षा' साहित्य में छिपी मनुष्यता , संवेदना, उसके सौन्दर्य, स्पंदन और विचार धाराओं को निष्पक्ष उजागर करता है। सो इस पत्रिका में प्रतिष्ठित हैं संपादकीय स्मस्त परम्पराओं से हटकर हैं। संभाव्य परिवार के प्रति मेरी हार्दिक शुभकामना है।

बी0के0 अरूण, भागलपुर

संभाव्य की चर्चा 'गोलकोण्डा दर्पण' में

आदरणीय संपादक जी!

सादर नमन!

''संभाव्य'' की चर्चा गोलकोण्डा दर्पण के नबम्बर अंक में है। इसी अंक में मेरी गजलें है। संभवतः आप देख भी लिये हों। पत्रिका के प्रति मैं जिज्ञासु हुआ हूँ।

हार्दिक सम्मान के साथ!

आपका केशव शरण, वाराणसी

संभाव्य की चर्चा 'प्राची' में

'संभाव्य' पत्रिका पढ़ी। पत्रिका बहुत अच्छी है। इसमें संभावनाएँ बहुत अधिक है।

इसकी चर्चा ''प्राची'पत्रिका में भी आई है। पत्रिका का भविष्य उज्ज्वल है। इसके प्रति मेरी शुभकामनाएँ हैं।

डॉ0 भावना शुक्ल

मोती नगर नई दिल्ली

संभाव्य की चर्चा 'हंस' में

श्री दयानंद जायसवाल

प्रधान संपादक–संभाव्य

महोदय,

संभाव्य की समीक्षा 'हंस' में पढ़ी। प्रभावित हुआ। संभव हो तो इसकी प्रति जनवरी, 2015 एवं उसके बाद के अंक/अंकों की ,यदि प्रकाशित हुई हों हमें भेजें। बताएं कि इस हेतु कितनी रकम डी/डी से भेजे। सदस्यता शुल्क के बारे में बताएँ।

सादर

भवदीय

डॉ0 अमरीश सिन्हा

उप प्रबंधक हिन्दी विभाग प्रमुख, मुम्बई, क्षेत्रीय कार्यालय–3

न्यू इंडिया एश्योरेन्स कम्पनी। दिनांक 06.05.2015

फोन : 022–2282 2264

प्राप्त पुस्तकें

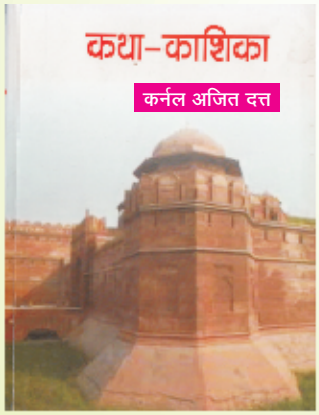

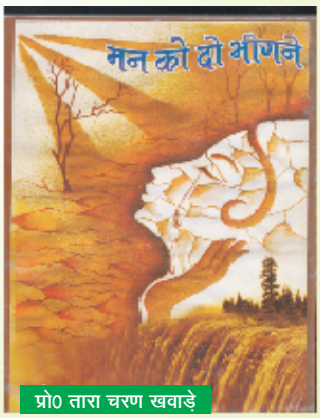

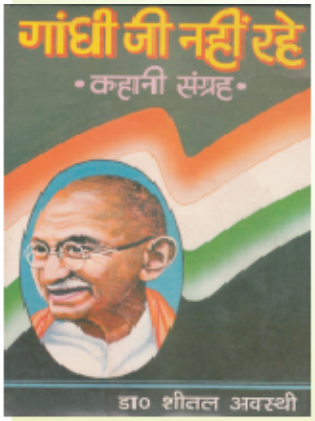

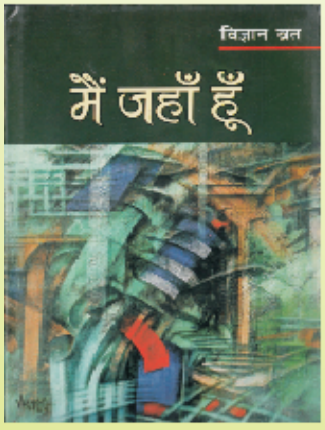

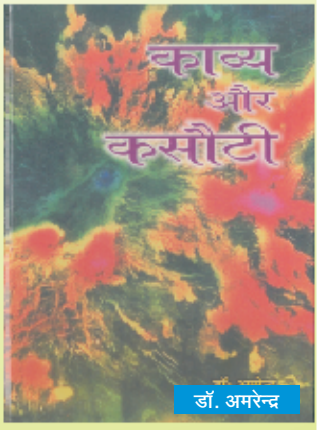

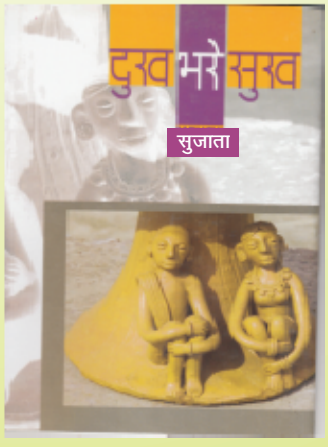

www.sambhavya.net

संभाव्य
प्रिंटिंग प्रेस, भागलपुर